जागोरी की त्रैमासिक पत्रिका
जुलाई–सितम्बर 2010

हम सबला

विशेष अंक
सम्मान के नाम पर हत्या

ये कैसा न्याय?

हम सबला

जुलाई-सितम्बर 2010

अतिथि संपादक
कल्याणी मेनन-सेन

संपादन एवं अनुवाद
जुही जैन

संपादन सहयोग
जया श्रीवास्तव
कल्याणी
खुर्शीद अनवर
सीमा श्रीवास्तव
रत्नमंजरी

मुख पृष्ठ व अन्य रेखाचित्र
बिंदिया थापर
आर्किटेक्ट, ग्राफ़िक डिज़ाइनर, लेखिका व चित्रकार हैं। वे विशेषतः बच्चों की किताबों का चित्रांकन करती हैं।

सज्जा व मुद्रण
सिस्टम्स विज़न
systemsvision@gmail.com

जागोरी JAGORI

बी-114, शिवालिक, मालवीय नगर
नई दिल्ली 110017
ई-मेल @jagori.org
वेबसाइट www.jagori.org
दूरभाष 26691219, 26691220
हेल्पलाइन 26692700

इस अंक में

हमारी बात — कल्याणी मेनन-सेन — 1

लेख

- अपमानजनक हत्याएं — ऋतु मेनन — 7
- खाप पंचायत, लिंग अनुपात व स्त्री शक्ति — रविन्दर कौर — 10
- रिवाजी व्यवहारः दक्षिण एशिया में महिला हिंसा की रूपरेखा — राधिका कुमारास्वामी — 15
- सम्मान जनित हत्याओं की रिपोर्टिंग — राजश्री दासगुप्ता — 37

संवाद

- खाप पंचायतः दुःसाहस के लक्षण? — जागमती सांगवान — 26
- मान के रखवालेः हथियारबंद भाई — अर्पिता बासु, नेहा भट्ट — 31
- स्वप्न सुंदरियांः बदलती लड़कियां — चंदर सुता डोगरा — 34

कानून

- धारा 300 संशोधन बिल 2010 — महेन्द्र कुमार सिंह, धनंजय महापात्र — 28

कहानी

- पगला गई भागो! — मैत्रेयी पुष्पा — 20

आमने-सामने

- खाप पंचायत व हत्याएंः इक्कीसवीं सदी का विरोधाभास — पिंकी आनंद — 29

कविता

- राक्षस पदतल पृथ्वी टलमल... — सुमन केशरी — 3
- भेजो नबी जी रहमतें — ज़ेहरा निगाह — 19

पुस्तक समीक्षा

- मर्डर इन द नेम ऑफ़ ऑनर — जुही जैन — 39

फ़िल्म समीक्षा

- क्राइम्ज़ ऑफ़ ऑनर (जॉर्डन/वेस्ट बैंक) — जुही जैन — 41

हमारी बात

हत्या तो हत्या है, चाहे सम्मान के नाम पर हो चाहे अपमान के

हम सबला का यह अंक उस समय आया है जब रोज़ाना सम्मान जनित हत्या की एक खबर हमारे सामने आ रही है। ये खबरें सिर्फ़ सामंतवादी "गऊ-पट्टी" राज्यों के देहाती इलाकों के तथाकथित पिछड़े समुदायों से नहीं बल्कि शहरी-भारत के दिल - दिल्ली व महानगरों से आ रही हैं जो आज देश में चल रही गर्मा-गर्म बहसों का केंद्र हैं और जहां नागरिक समाज व राजनीति में सशक्त आवाज़ें तथा मीडिया इस मुद्दे पर अलग-अलग पक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं।

इस वर्ष जून में शक्तिवाहिनी महिला संगठन की याचिका के जवाब में सर्वोच्च न्यायालय ने केंद्र सरकार व पंजाब, हरियाणा, बिहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, झारखंड, हिमाचल प्रदेश व मध्य प्रदेश की राज्य सरकारों से सम्मान जनित हत्याओं के मुद्दे पर जवाबदेही मांगी थी। अदालत जानना चाहती थी कि परिवारों और समुदायों द्वारा प्रताड़ित किए जा रहे युवा जोड़ों की सुरक्षा के लिए कौन से कदम उठाये जा रहे हैं।

सर्वोच्च न्यायालय का यह आदेश परिवारों, रिश्तेदारों व समुदाय के सदस्यों द्वारा खाप पंचायत फतवों के तहत की जाने वाली युवा दम्पतियों की हत्या के जवाब में जारी किया गया था- वो हत्याएं जो समुदाय की 'शुद्धता' की सुरक्षा व 'कुल की प्रतिष्ठा' वापस लौटाने के लिए ज़रूरी समझी जा रही थीं। इनमें से अधिकांश हत्याओं की खबरें उत्तरी भारतीय राज्यों- हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश व राजस्थान से आ रही थीं।

इन हत्याओं पर उठ रहे सार्वजनिक बवाल ने हमारे इस विश्वास की धज्जियां उड़ा दीं कि सम्मान के नाम पर हत्याएं भारत में नहीं होतीं- तथा ये उस प्रतिगामी मानसिकता का नतीजा है जिसे विकास और प्रगति की राह पर बढ़ता भारत व भारतवासी पीछे छोड़ चुके हैं। कट्टरपंथी हिन्दू संगठनों ने तो पाकिस्तान से आने वाली 'कारो-कारी' की खबरों की निंदा करते हुए यह भी संतोष ज़ाहिर कर डाला कि "इस तरह की घटिया बातें हिन्दू भारत में हो ही नहीं सकतीं जहां औरतों को देवीतुल्य मानकर उनकी पूजा की जाती रही है।"

खैर देर से ही सही हमारी आंखों पर चढ़ा रंगीन चश्मा अब उतर चुका है। अब तो भारतीय 'प्रगति' का गुणगान और बदसूरत सच्चाइयों को छुपाने की कोशिश करने वाला मीडिया भी तथाकथित पिछड़े राज्यों व ग्रामीण इलाके से ही नहीं बल्कि हमारे जगमगाते वैश्विक शहरों दिल्ली व मुंबई से भी आने वाली इन हत्याओं की वारदातों पर हैरत व अफ़सोस व्यक्त कर रहा है।

नारीवादियों के अनुसार हर संस्कृति व इतिहास में परिवार की इज़्ज़त महिलाओं की यौनिकता व शरीर पर केंद्रित रही है। समुदाय का मान उसकी औरतों की 'शुचिता' पर टिका है और इसे बचाये रखने के

लिए 'अनधिकृत' पुरुषों से शरीर को दूर रखा जाना चाहिए। औरतों पर समुदाय की इज़्ज़त बरकरार रखने के लिए अपनी बेटियों व खुद की पवित्रता को बचाकर रखने की ज़िम्मेदारी डाल दी जाती है और इसके तथाकथित खोने पर इसे वापस लौटाने की ज़िम्मेदारी सदैव समुदाय के पुरुष उठाते हैं।

हम इस सच से दूर नहीं भाग सकते कि सम्मान और शुचिता के ये विचार भी हमारे सामाजीकरण का हिस्सा हैं। ये नैतिकता, संस्कृति और मर्यादा के हमारे मानदण्डों से भी संबद्ध हैं। हत्याओं का विरोध करने वाले कई लोग भी खाप को एक विध्वंसात्मक विमुखी समाज को स्थिरता प्रदान करने की सामाजिक भूमिका पूरी करते हुए देखते हैं। कुछ अन्य लोग मानते हैं कि सम्मान अपने आप में एक सकारात्मक मूल्य है जो हमारे कई प्राचीन समाजों का महत्वपूर्ण नियम रहा है। कई दूसरे ऐसे भी हैं जो खाप पर होने वाले हमलों को उस नव-उदारवादी वैश्विकता के एक लक्षण के रूप में देखते हैं जिसमें बगैर सोचे-समझे अपने समाज की परम्पराओं और रिवाजों को व्यक्तिगत उपभोक्तावाद की वेदी पर बलि चढ़ा दिया जाता है। और एक अन्य पक्ष उनका भी है जो सगोत्र विवाहों पर खाप प्रतिबंध को विज्ञान के आधार पर वैध ठहराते हैं।

पर खाप व विश्व में उनके जैसे सामाजिक संस्थानों का सम्मान, परम्परा व संस्कृति के सकारात्मक मानकों से कोई सरोकार नहीं है। जैसा कि इस अंक में शामिल लेखों में स्पष्ट उभरकर आता है सम्मान की खातिर की गई हत्याएं सिर्फ़ अवैध, कत्ल हैं जिनका समर्थन नहीं किया जा सकता। इनके लिए उस सभ्य समाज में कोई जगह नहीं है जहां मानव अधिकार हर व्यक्ति का पैदाइशी हक़ है, जहां ताकत की जगह कानून का राज चलता है, जहां बदले से अधिक अहमियत न्याय को दी जाती है और झगड़ों के समाधान के लिए हिंसा का इस्तेमाल गैरकानूनी ठहराया जाता है।

जहां तक सगोत्र विवाहों पर खाप के प्रतिबंध के तथाकथित विज्ञानी आधार का सवाल है तो यह दावा उतना ही सही है जितना कि कोई खास फल के सेवन या किसी शुभ मुहूर्त पर यौन संबंध बनाने से बेटा पैदा होने की संभावना। हर गोत्र के साझे पूर्वज शायद द्वापर युग या उसके पहले के समय में बसते थे- यानी तीस हज़ार साल पहले (दूसरे शब्दों में कहें तो मानव सभ्यता के विकास पूर्व)। अगर कुछ भी न मानें तो यह तो है ही कि सामान्य जनसंख्या के बीच इस लम्बे समय में होने वाले प्राकृतिक परिवर्तन से गोत्र के अंतर्गत इतनी अधिक आनुवांशिक विविधताएं पैदा होंगी कि यह दावा करना कि करोड़ों लोग एक ही बड़े परिवार के सदस्य हैं अविश्वसनीय है।

इसके अलावा विश्व में किये अध्ययन यह दर्शाते हैं कि उन दम्पतियों के बच्चे जिनके माता-पिता एक ही वंशावली से संबंध नहीं रखते तथा सामान्य जनसंख्या की संतानों के बीच आनुवांशिक असमानताओं व अन्य समस्याओं के स्तर में कोई विशेष फ़र्क़ नहीं है। इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ़ इम्यूनॉलॉजी, नई दिल्ली के जाने-माने आनुवांशिक विशेषज्ञ डॉ. सत्यजीत रथ के अनुसार, "आनुवांशिकी गोत्र के निर्माण पर प्रश्न उठाती है। ऐसा नहीं है कि यह अशुद्ध विज्ञान है- दरअसल यह तो विज्ञान है ही नहीं।"

हम सबला के इस अंक की शुरूआत हम एक ऐसी कविता से कर रहे हैं जो हृदयस्पर्शी और नितान्त खुले अंदाज़ में सम्मान के नाम पर की जाने वाली हत्याओं की सच्चाई बयान करती है। अंक के बाकी लेख व वृत्तान्त भी इस घृणित अपराध को पनपानेवाले पदानुक्रम, तनाव और दमन के जटिल ताने-बाने के विभिन्न पहलुओं का निरीक्षण करते हैं।

कल्याणी मेनन-सेन
नारीवादी कार्यकर्त्ता, शोधकर्त्ता व लेखिका हैं।

राक्षस पदतल पृथ्वी टलमल...

सुमन केशरी

गाँव के बीचों–बीच
सरपंच के दरवाज़े के ऐन सामने
गाँव के सभी जवान और बूढ़े आदमियों की मौजूदगी में
बिरादरी के मुखियों ने वो फैसला सुनाया था।

जाने कब से गुपचुप बातें होती रही थीं
लगभग फुसफुसाहट में
जिनमें दरवाज़ों के पीछे खड़ी औरतों की फुसफुसाहटें
भी शामिल थीं।
धीमे–धीमे सिर हिलते थे
पर गुस्से या झल्लाहट में भी आवाज़ ऊँची न होती थी
मानो कोई साज़िश रची जा रही हो
हाँ, दो–एक आँखों से आँसू ढलके ज़रूर थे
जो तुरन्त ही किसी अनजान भय से पोंछ लिए गए थे।
और रोने और सुननेवाले दोनों
दोहत्थी माथे पर ठोंकते थे
खुद को बरी कर
किस्मत को कोसते थे
फिर सिर हिलाते थे सुर में।

उस शाम बच्चे
छोड़ दिए गए थे अपनी
दुनिया में
देर रात खेलते रहे
छुआ–छुई, आँख–मिचौली,
ऊँच–नीच और जाने
क्या–क्या।
क्या मज़ा था
आज कोई टोका–टोकी
नहीं थी।

यहाँ तक कि कई बछड़ों ने पूरा दूध पी लिया
पर बच्चे खेलते रहे अपनी ही धुन में
कोई बुलाता न था– न खाने को, न पढ़ने को।
पर जब–जब खेलते बच्चे गए घर के भीतर
वह फुसफुसाहट एकदम गायब हो गई
और वे तुरन्त भेज दिए गए फिर से बाहर।
जाने क्या बात थी?
क्या कभी ऐसा होता है भला
कइयों ने दरवाज़े के पीछे कान चिपकाए
या फिर भूख और नींद के बहाने घर में बैठे रहे
पर बेहया, इज़्ज़त, भाग्य, मर्यादा जैसे
कुछ बेतुके शब्द सुनाई पड़े
जो कोई पूरी कहानी नहीं गढ़ते थे।

उस रात शायद ही किसी घर में पूरी रसोई बनी
कइयों के तो पेट निन्दा–रस से भरे थे
तो कई जीत की खुशी में मगन थे
कुछ छोड़ जाना चाहते थे कदमों के निशान
तो कुछ बन जाना चाहते थे धर्म, मर्यादा,
संस्कृति की पहचान।

कोई सो नहीं पाया उस रात
यहाँ तक कि देर रात उछल–कूद मचाते
बच्चे तक चौंक–चौंक उठे थे
कितनों ने बिस्तर तर किए
कितने झगड़े नींद में ही
कई सिसकियाँ भरते रहे रात भर
कोई डरावना सपना देखते थे
शायद।

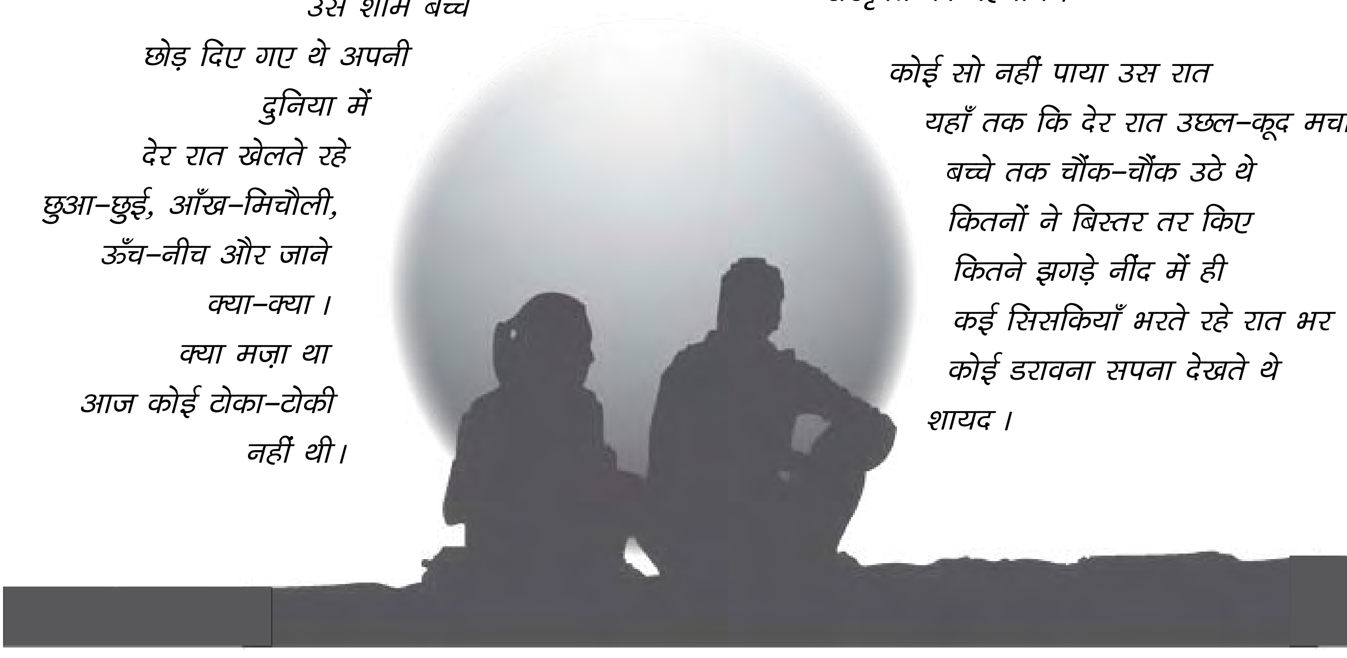

उस रात गर्भस्थ शिशु भी हिलते-डुलते रहे बौखलाए से
और कुछ खामोश ही रहे
माँओं की आशंकाओं को बढ़ाते हुए
उस रात कुछ नौजवान दम साधे पड़े रहे
मानो उन पर कोई तलवार आ लटकी हो।
उस रात किसी लड़की को पेशाब न लगी
उस रात कोई गाय रंभाई नहीं
बड़ी अजीब थी गर्मी की वह रात
सर्द एकदम सर्द...

उस दिन बड़ी देर तक सूरज नहीं उगा
भोर का तारा जाने कहाँ दुबका रहा
बस हवा चलती थी निरंकुश बादशाह-सी
हरहराती सब पर झपटने को तैयार।

पर आखिरकार वह समय आ ही गया
जिसे सुधीजन दिन कहते हैं
सभा जुटी, सभी जन आए
कुछ सर उठाए, तो कुछ कन्धे झुकाए।

औरतों ने भी माँओं को घेर सरपंच की दालान
में कब्ज़ा जमाया
वैसे वो जगह कभी उनकी न थी और न रहेगी आइन्दा
पर उस दिन बात ही कुछ ऐसी थी
आखिर सभी की खामोशी ज़रूरी थी
कि कोई यह न कहे कि उसे बताया न गया था।

हाँ बच्चे भेज दिए गए चरवाहों के संग
आज कोई स्कूल न था
क्योंकि स्कूल तो घर होता है, मुहल्ला होता है,
बिरादारी होती है
और गाथाएँ होती हैं
जिन्हें कुछ नादान बच्चे अपने शब्दों में पढ़ लेते हैं
और जाने कैसे अपनी गाथाएँ रचते हैं
बावजूद इसके कि सभी शब्दों पर हमने पहरेदार
बिठा दिए हैं...

सो उस दिन पहरेदारों का जमावाड़ा था
और उनके बीच बँधा खड़ा एक नौजवान
जाने कहाँ खोया
जाने क्या सोचता
क्योंकि कभी उसके चेहरे पर एक सपनीली मुस्कान
तैरती
जो उसकी आँखों में उगते सूरज का-सा प्रकाश भर
जाती।
चेहरा दीप्त हो उठता तृप्त शिशु-सा
होंठ सिकुड़ते मानो चूम रहे हों
सिर मस्ती में हिलने लगता
अनहद नाद सुनता हो मगन
पर तुरन्त ही
कुछ भी कर गुज़रने को तैयार
बाँहों की माँसपेशियाँ फड़कने लगतीं
गले की नसें तन जातीं
और वह हड़बड़ाकर देखने लगता इधर-उधर
दीवाना-सा।
"अब हड़बड़ा रहा है, दीवाना-सा"
यह पहरेदारों ने कहा था
पर इन शब्दों में न कोई करुणा थी
न प्रशंसा
और न ही दीवानगी को समझने का कोई बोध।
सभा ने तो गरियाया ही था जी खोल
कवियों, शायरों, किताबों, मास्टरों, पीरों-फकीरों, रेडियो,
टी.वी. और सिनेमा को
माँ भी नहीं बख्शी गई थी उस दिन
उसके दूध के खोट भी गिनाए गए थे उसी दिन।

दालान के कोने में लड़की खौफ़ज़दा थी
छिटकी सहेलियाँ थीं
और माँ मानों पाप की गठरी
सिर झुकाए खड़ी थी।
बीच-बीच में घायल शेरनी-सी झपटने को तैयार
आँखों से ज्वाला बिखेरती
दाँत पीसती, दोहत्थी छाती पर मारती।
सब कुछ बड़ा अजीब था
न तो लड़के ने कोई डाका डाला था
न किया था किसी का बलात्कार

और न लड़की ने किया था कोई झगड़ा
या फिर किसी बड़े का अपमान।
बस किया था तो बस प्यार
उस बाहर खड़े लड़के से
जो सबसे जुदा था
सपनों की दुनिया रचने वाला
मस्त और बेपरवाह
जिसके सामने पड़ते ही--
बोली कोयल-सी, आँखें हिरणी-सी,
चाल हंसिनी-सी हो जाती थी
खेतों पर बरसाती धूप चाँदनी-सी लगती थी
और गोबर की डलिया फूलों से भर जाती थी।
जिसके सामने पड़ते ही सब जग उजास हो उठता था
कोई पराया न लगता था और सभी का दुख
अपना हो जाता था
कौन था वह, जो उसे-इतना अपना लगता था
कि वह सभी के लिए इतना पराया हो गया
इतना पराया हो गया कि आज वह
दुश्मन-सा बँधा खड़ा था अपनी ही सभा में
अपने ही लोगों के बीच।
वह इतना पराया हो गया कि उसके संग होने
की इच्छा भर से
वह भी उतनी ही पराई हो गई
माँ-बाप, माँ जाए भाई-बहन सभी से !

हाँ लड़की पराया धन ही होती है
पर साहूकार के घर के लिए सुरक्षित धन
प्रेम रचाने के लिए उत्सुक मन नहीं
पर यहाँ तो देह का आकर्षण खड़ा था साक्षात।
सभा को तो देव का आकर्षण भी मंजूर न था
क्योंकि सभा जानती है
कि प्रेम देह से हो, या देव से
मनुष्य से हो या ईश्वर से, संशयों से घिरा रहता है
साधना तलाशता है
समाज के बन्धनों को तोड़ता है
मर्यादाओं को लाँघता है...

पर माँ क्यों सुनाए थे तूने मीरा के भजन
कथा कही कई बार राधा-कृष्ण की
मास्टर जी क्यों पढ़ने को दी थी पोथी शीरीं-फरहाद की
और दीदी तू भी तो रोई थी लैला-मजनू का सिनेमा
देखते-देखते।

और आज तुम सब दूर खड़े हो
जकड़ दिया है तुमने मुझे रस्सियों से
यह सोचते-सोचते लड़की को
प्रियतम की पकड़ याद आई
वह कलाई पे पकड़
और आलिंगन की जकड़
जिसे छुड़ा कर वह भाग जाना चाहती थी
और उसमें बँधी भी रहना चाहती थी
ज़िन्दगी-भर।

चाहत की कैसी दुनिया
आह! वह जी लेना चाहती है, वे क्षण एक बार फिर
एक बार फिर सहलाना चाहती है उस सुन्दर मुख को
सँवरे वालों को खेल-खेल में बिखेर देना चाहती है
लज्जा से बचने के लिए भी उन आँखों को चूम लेना
चाहती है
जो उसे देखते हुए झपकना भी भूल जाती हैं
एक बार वह दौड़कर उन बाहों में समा जाना चाहती है
बाँध लेना चाहती है उस गठीली देह को आलिंगन में।

ओह! कितना दर्द है पीठ पीछे
बँधी कलाइयों और पैरों में
ऐसा तो ज़िबह करने वाले जानवर भी नहीं बांधे जाते माँ
और तुमने बाँध दिया
खुद अपनी जाई को अपने हाथों
मानो कोख ही बाँध दी हो मर्यादा की रस्सी से!
ऐसा क्या तो कर दिया मैंने ?
बस मन ही तो लग जाने दिया
जहाँ उसने चाहा
कभी जात की चोहद्दी से बाहर

तो कभी रुतबे की खाई को लाँघ
तो कभी धर्म की दीवार के पार।

पर क्या मन का लग जाना ही
सबसे बड़ा अपराध नहीं, क्या कभी भी, कहीं भी
लैला–मजनूँ से लेकर
रोमियो–जूलियट तक।
और इन तमाम जन्मों में
कभी मैं रोशनी कहलाई, तो कभी पिपरी गाँव में जन्मी
पर सभी जन्मों में
हमने प्रेम... बस प्रेम को जीया
केवल प्रेम किया।
और छोड़ प्रेम को कोई नहीं जानता
कि प्रेम की अपनी ही मर्यादा है
अपने ही नियम हैं
और अपना ही संसार है।

पर इन नियमों से समाज तो नहीं चलता!
तो समाज के हित में
फैसला सुनाया मुखियों नेः
ऐसी मजाल जो व्यक्ति करे मनमानी
लटका दो इन्हें फाँसी पर
ताकि समझ लें अंजाम सभी

वे भी
जो आएँगे कल इस धरा पर
प्रेम का, मनमानी का
मर्यादा के नाश का
संस्कारों के ह्रास का !

तो सदल बल सभी लटका आए उन मासूमों को
गाँव के पार
पीपल की डार पर।
सभी साथ थे कोलाहल करते
ताकि आत्मा की आवाज़ सुनाई न पड़े
घेर न ले वह किसी को अकेला पाकर
आखिर संस्कार और मर्यादाएँ
बचाए रखती हैं जीव को
अनसुलझे प्रश्नों के दंशों से
दुरुह अकेलेपन से।

तो जयजयकार करता
समूह लौट चला उल्लसित कि
बच गईं प्रथाएँ
रह गया मान
रक्षित हुई मर्यादा
फिर से खड़ा है धर्म बलपूर्वक
हमारे ही दम पे।
जयजयकार, तुमुल निनाद, दमकता दर्प
सब ओर अद्‌भुत हलचल
लौट्ता है विजेताओं का समूह
राक्षस पदतल पृथ्वी टलमल...

सुमन केशरी *विज्ञान व तकनीकी मंत्रालय में डिप्टी सेक्रेट्री के पद पर कार्यरत हैं।*

लेख

सम्मान हत्या में सिर्फ़ शर्म ही है

अपमानजनक हत्याएं

ऋतु मेनन

प्यार के सपने संजोए, 18 वर्षीय मैमुन ने शादीशुदा व दो बच्चों के पिता इदरीस के साथ भाग जाने की गलती की। प्रेमान्ध होने के साथ-साथ यह उसकी अपने चाचा के साथ निकाह से बचने की कोशिश थी। मैमुन को वापस लाकर ज़बरदस्ती उसका निकाह पड़ोस के एक गंवार आदमी से कर दिया गया। निकाह के बाद घर लौटते समय पति ने उसके साथ बलात्कार किया। उसे वेश्या कहते हुए अपने दोस्तों के हवाले कर दिया। उसके बाद गले से नाभि तक चाकू से काट कर सड़क पर फेंक दिया। परिवार की "इज़्ज़त" पर "कलंक" लगाने पर यह मैमुन की "सज़ा" थी।

देश के एक दूसरे हिस्से में गुंडों ने प्रभा को बिजली के खंभे से बांध कर मारा-पीटा और उसका सर मूंड दिया। प्रभा ने अपने एक रिश्तेदार के साथ रात गुज़ारी थी।

पास के एक जोहरी गांव में यशपाल की बेटी की शादी उसके पसंद के लड़के से नहीं होने दी गई क्योंकि वह जाति के तयशुदा मानकों के दायरे के बाहर थी।

भारत में सम्मान बचाने के लिए औरतों की हत्या करना सिर्फ़ मुसलमानी चलन नहीं है। ये अपमानजनक हत्याएं जाति व पंथ से परे हैं। इस समझौते में हिन्दू, सिख, मुसलमान, छूत, "अछूत" सभी शामिल हैं जिसमें "मर्दानी आन" का बदला अपनी औरतों की हत्या करके लिया जाता है। ये कत्ल गांव के बड़े-बुजुर्गों व जाति पंचायतों की सक्रिय मिलीभगत से, सार्वजनिक रूप से या चुपचाप परिवार के सदस्यों द्वारा किए जाते हैं। कत्ल की वजह कुछ भी हो सकती है— धर्म के दायरे में रहते हुए परन्तु जायज़ मानकों के बाहर औरत का प्रेम संबंध—जैसा मैमुन ने किया, समुदाय व धर्म की सीमाओं को लांघकर जाति-समुदाय या गैर-जातीय विवाह का जुर्म या औरत द्वारा जार-कर्म करने की हिमाकत। उकसाने वाले कारण कोई भी हो परन्तु सभी वजहें यह साबित करने के लिए काफी हैं कि औरत की यौनिकता के परेशान कर देने वाले सवाल के हिंसक 'समाधान' के लिए समाज में एक साझी पितृसत्तात्मक सहमति है। औरतों का यौनिक दर्जा- चाहे 'पवित्र', 'कलंकित' या 'शुद्ध' कोई भी हो एक कठोर और

सख्त नियंत्रण का मसला है और इसकी मुखालफ़त करने की कोशिश की सज़ा मौत भी हो सकती है।

भारत के कुछ महिला समूह व नारीवादी जिन्होंने इस तरह के मामलों को सार्वजनिक व कानून की नज़र में लाने के लिए सक्रिय कार्यवाई की है, औरतों व कुछ पुरुषों पर होने वाली हिंसा के इन नृशंस रूपों को 'सम्मान हत्या' व 'प्रतिष्ठा से जुड़े जुर्म' के रूप में चरितार्थ करने पर गंभीर सवाल उठा रहे हैं। उनका मत है कि इनको 'दूसरे' अपराधों की श्रेणी में रखकर हम इनके वास्तविक स्वरूप को अनदेखा कर रहे हैं और इन्हें मध्यकालीन, असामान्य व विवेकहीन समाज का हिस्सा मान रहे हैं। उनकी मांग है कि इन हत्याओं को उनके सही स्वरूप यानी सामाजिक व आर्थिक भेदभाव या फिर वैध (जाति, धार्मिक व जातीय समुदाय) मानकों को कायम रखने के लिए, औरतों पर यौनिक नियंत्रण व काबू करने के प्रयासों के तौर पर देखा जाना चाहिए। ये सभी विभाजन सीमाओं की कट्टरता पर आश्रित हैं जो सजातीय-सगोत्र दायरों को बरकरार रखने के लिए ज़रूरी हैं और इसमें औरतों की यौनिकता की सख्त पहरेदारी महत्वपूर्ण हैं। संबंधों में 'चुनाव' इस निरंतरता को भंग करके समुदाय की राजनैतिक अर्थव्यवस्था के लिए खतरा पैदा कर देते हैं। उदाहरण के लिए जब एक उच्च जाति की औरत एक दलित पुरुष के साथ विवाह करने के पश्चात अपनी विरासत पर अधिकार जताती है तब वह असमानता को चुनौती देकर हर लिहाज़ से यथापूर्व स्थिति को अस्थिर कर देती है।

ऐमनेस्टी इंटरनेशनल की पूरना सेन ने "अपमानजनक हत्याओं" की छः मुख्य विशेषताएं चिन्हित की हैं— पितृसत्तात्मक लैंगिक संबंध जो औरतों की यौनिकता नियंत्रण पर आश्रित हैं; महिलाओं के व्यवहार पर नज़र व निगरानी रखने में महिलाओं की भूमिका; सीमाओं को लांघने के दुःसाहस के लिए सज़ा का सामूहिक निर्णय; हत्याओं में औरतों की भागीदारी की संभावना; जबरन हत्याओं व आज्ञापालन के माध्यम से 'सम्मान' की वापसी; इन हत्याओं के लिए राज्य व सामाजिक सहमति- "सम्मान" को इन हत्याओं के मान्य मकसद, वैधता व सफाई के रूप में पहचान व स्वीकृति।

मैमुन के मामले में उसकी शादी परिवारवालों द्वारा आर्थिक फायदों के लालच तथा परिवार व सामाजिक उम्मीदों की पूर्ति को मद्देनज़र रखकर तय की गई थी। जब मैमुन ने दोनों का विरोध किया तो सबसे पहली प्रतिक्रिया उसकी मां की थी— *'तू काफ़िर है, तूने अपने ही गांव में एक निचली जाति के शादीशुदा मर्द से विवाह किया है। मैं तुझे मार डालूंगी। अगर उन्होंने तुझे छोड़ दिया तो मैं तुझे काटकर फेंक दूंगी।'* जब *राष्ट्रीय महिला आयोग* के अफ़सरों की टोली गांव में छानबीन करने पहुंची तो गांववालों ने उनको घेरकर नारे लगाये, *'ये हमारे रिवाज हैं, इनमें कोई दखल नहीं दे सकता। न इंसान, न भगवान।'*

ऊपर लिखे दोनों अन्य मामलों में, पूरे गांव की 'प्रतिष्ठा की रक्षा' के लिए जाति पंचायत द्वारा फैसला लिया गया था। जाति पंचायतें अवैध व असंवैधानिक होती हैं। इनके पास चुनी गई पंचायतों की तरह स्वशासन का संवैधानिक हक़ नहीं होता। अपने तहत 'प्रशासित' समुदाय में ये नैतिक पहरेदारों की भूमिका अदा करती हैं जो अक्सर इन्हें विरासत में मिलती है। इसके संरक्षक सदस्य अक्सर 'भ्रष्ट' होते हैं तथा न्याय करने के समय 'जाति' पदानुक्रम का विशेष ध्यान रखा जाता है।

सम्मान हत्या में सम्मान कैसा?

'अपमानजनक' हत्याओं की रिपोर्ट करने वाले महिला समूहों व कार्यकर्त्ताओं के अनुभव इन तथ्यों का खुलासा करते हैं। *जनवादी महिला समिति* ने उत्तर भारत के हरियाणा राज्य में हुई हत्याओं का दस्तावेज़ीकरण किया है। उनके अनुसार पुलिस इन घटनाओं की रिपोर्ट दर्ज करने से कतराती है क्योंकि इनमे राज्य पक्षों व जाति पंचायतों की सांठ-गांठ होती है। पिछले पांच सालों से पुलिस ने जोहरी गांव में कदम नहीं रखा है; बिजनौर ज़िले में जब प्रभा के साथ मार-पीट की गई तब पुलिस का सिपाही मूक दर्शक बना खड़ा था। जब संगठन के कार्यकर्त्ताओं ने इन हत्याओं का खुलासा किया तब गांववालों व पंचायत ने इस पर पर्दा डालने की कोशिश की। इन हत्याओं में औरतों की हत्या के तथ्यों को स्थापित करने के लिए ज़रूरी पोस्टमार्टम भी नहीं किये गये थे। हाल में कार्यकर्त्ताओं को यह भी कहा गया कि उन्हें स्थानीय पंचायत को 'सुरक्षा राशि' देनी चाहिए क्योंकि आक्रोश से भरे गांववालों व परिवारों से उनकी जान को खतरा है।

कभी-कभार जब कोई मामला *राष्ट्रीय महिला आयोग* या *राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग* के पास आता है तब अदालत से महिला के पक्ष में होने वाले फैसले को 'खूनी चौकसी' के ज़रिए बदल दिया जाता है। मैमुन जिसके पति ने उसे मरणासन्न अवस्था में सड़क पर छोड़ दिया था की देखरेख एक बुज़ुर्ग दम्पति ने की। स्वस्थ हो जाने के बाद मैमुन वापस इदरीस के पास चली गई। *राष्ट्रीय महिला आयोग* की मदद से सर्वोच्च न्यायालय का फैसला मैमुन के पक्ष में हुआ। परन्तु चार वर्ष बाद मैमुन के छोटे भाई ने उसका कत्ल कर दिया। भाई का कहना था कि सिर्फ़ उसकी बहन की मौत ही परिवार के कलंकित 'सम्मान' की भरपाई कर सकती थी।

इन घटनाओं से यद्यपि हमारे ज़ेहन में अंधकार-युग में रहने वाले बर्बर समाज की छवि कौंधती है परन्तु इसके विपरीत ये हत्याएं हमारे आधुनिक समाज में, दिन दहाड़े, कानून के संरक्षकों की जानकारी के साथ घटती हैं। ये 'हत्याएं' राज्य के विरुद्ध अपराध होने के साथ-साथ खास समुदाय व परिवारों के ख़िलाफ़ भी जुर्म हैं। फिर भी राज्य, भूल-चूक व पितृसत्तात्मक सुविधाओं जिसमें उल्लंघनकर्त्ता की हत्या का अधिकार भी शामिल है व मूक समर्थन के ज़रिए खुद को अपराधकर्म करने वालों के साथ सम्मिलित कर लेता है। ऐसा लगता है कि राज्य की नज़र में भी औरत का शरीर पुरुष की जागीर है जिसका वह अपनी मर्ज़ी के अनुसार निपटारा कर सकता है।

ऋतु मेनन *नारीवादी लेखिका व विमेन अनलिमिटेड, दिल्ली की संस्थापक हैं।*

> *"जाति पंचायतें राज्य के कानूनी निर्णय करने के दायित्व को विस्थापित करती हैं तथा अनौपचारिक व गैर-राज्य न्यायिक ढांचों को उठाकर कानून द्वारा मान्य 'रिवाजी' व्यवहार में परिवर्तित कर देती हैं। ये ढांचे सामाजिक व लैंगिक समानता के नियमों को नहीं पहचानते व सदैव पितृसत्तात्मक लैंगिक संबंधों को पुनर्स्थापित करते हैं। उनकी इस निर्णायक सत्ता को राज्य संरचनाएं अपनी निष्क्रियता से "वैधता" प्रदान करती हैं।"*
>
> **इंदिरा जयसिंग**
>
> *सर्वोच्च न्यायालय की अधिवक्ता*

लेख

खाप पंचायत, लिंग अनुपात व स्त्री शक्ति

रविन्दर कौर

आजकल खाप पंचायतें सम्मान जनित अपराधों में अपनी भूमिका के लिए खबरों में निरन्तर स्थान बनाए हुए हैं। इनमें अधिकांश अपराधों में उन विवाहों की गिनती है जो हरियाणा व पश्चिमी उत्तर प्रदेश समाज के अनुसार 'अनुपयुक्त' हैं। समाज इन शादियों पर अपमानित महसूस करता है और समाज के प्रतिनिधि के तौर पर खाप पंचायत दम्पतियों व उनके परिवारों को सज़ा देती है। इन अति-संवैधानिक संरचनाओं के नैतिक दबाव व हुकूमत को चुनौती देने का डर विवाहित जोड़े के सगे-संबंधियों को उन्हें घर से बाहर निकालने के लिए प्रोत्साहित और बाध्य कर देता है तथा गांववाले उनके परिवारों को बहिष्कृत करते हैं। इस बात में कोई हैरानी नहीं है कि पुलिस सुरक्षा से भी इन पीड़ितों को कोई राहत नहीं मिल पाती क्योंकि नेता व पुलिस दोनों ही इन विवाहों पर विरोध को खुलेआम समर्थन देते हैं और बदला लेने की इजाज़त देकर नियमों का उल्लंघन करने वालों को माफ़ कर देते हैं।

जैसे-जैसे हरियाणा के कुंवारों के लिए दूरदराज़ के इलाकों से विजातीय दुल्हनें आने लगती हैं वैसे-वैसे अपने दम्पतियों पर सामाजिक दबाव बढ़ता जाता है। अगर एक जोड़े का गोत्र एक हो या उन्होंने एक ही गांव अथवा पड़ोसी गांव में विवाह किया हो तो उन्हें बतौर भाई-बहन रहने को बाध्य किया जाता है। खाप पंचायत को इस बात से कोई सरोकार नहीं होता कि विवाह माता-पिता ने तय किया है, बच्चे का जन्म हो चुका है या फिर कानून की नज़र में यह शादी वैध है। कानून भी दम्पति की कोई सुरक्षा नहीं करता और 'पवित्र' सामाजिक मानकों के आगे उनको सर झुकाना पड़ता है। इस 'गलत' विवाह का बदला लेने वाले माता-पिता, भाई-रिश्तेदारों को स्थानीय न्याय करने वालों से वैधता और सहयोग मिलता है। हरियाणा की धूल में नागरिकता, आधुनिकता, विकास लैगिंक समानता के नारे दब जाते हैं। हरियाणा व पश्चिमी उत्तर प्रदेश में खाप पंचायतों के पुनुरुत्थान तथा स्वःचयनित विवाहों पर उनकी कार्यवाई को लेकर काफी सटीक कारण प्रस्तुत किए जा रहे हैं, परन्तु इन मामलों से जुड़े दो अहम पहलुओं को उजागर करना महत्वपूर्ण है। पहला, बड़े पैमाने पर स्त्री भ्रूण हत्या, बालिका शिशु के प्रति बेरुखी व स्त्री भ्रूण गर्भपात। दूसरा, इस पुरुष प्रधान समाज में केवल औरतें ही सार्वजनिक रूप से खाप पंचायतों व उनकी हुकूमत को चुनौती दे रही हैं। एक पुरुष प्रधान समाज, जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र खासकर पंचायतों में औरत की मौजूदगी या जगह नहीं होती वहां यह वास्तव में आश्चर्य की बात है कि वे अपने पति, बच्चों और परिवारों के हक़ व सुरक्षा के लिए लाठियां उठा रही हैं।

अंतर्जातीय बनाम सजातीय विवाह

खाप के पुनुरुत्थान के पीछे कारण पर बात करने से पहले यह समझना ज़रूरी है कि खाप पंचायतें किन विवाहों व संबंधों का विरोध कर रही हैं। आम धारणा के विपरीत ये हमेशा 'घर से भागकर' की गई शादियों के ही ख़िलाफ़ नहीं हैं बल्कि कई अन्य तरह

के विवाहों पर इन्हें आपत्ति है। कुछ विवाह जिन्हें निशाना बनाया जा रहा है वे अंतर्जातीय हैं जिनमें पुरुष अधिकतर दलित व औरत जाट है। इनके विपरीत सजातीय विवाह हैं जो वर्जित गोत्र के लोगों के बीच होते हैं। कुछ अन्य में गांव के भीतर किए गए विवाह हैं क्योंकि हरियाणा में 'ग्राम बहिर्विवाह' रिवाज के अनुसार गांव से बाहर ही शादी की जानी चाहिए चाहे विवाह योग्य गोत्र गांव में ही मौजूद क्यों न हो। 'ग्राम बहिर्विवाह' को थोड़ा अधिक विस्तारित करके 'क्षेत्रीय बहिर्विवाह' का रिवाज होता है जिसके तहत कुछ गांव 'भाईचारे' के संबंध से जुड़े होते हैं और उन गांवों के लड़के-लड़कियों को भाई-बहन मान लिया जाता है। जैसा की सामाजिक मानवशास्त्री जानते हैं व्यभिचार की परिभाषा में सांस्कृतिक भिन्नताएं हैं और उत्तर भारत में इसके अंतर्गत वर्जित श्रेणियों में कई गोत्र व गांव शामिल होते हैं। यहां पर दूल्हा-दुल्हन के बीच कोई भी रिश्तेदारी का संबंध जितनी दूर की पीढ़ी तक न हो उतनी ही उस विवाह की साख ज़्यादा बड़ी होती है। पुराने ज़माने में वर-वधू के गांव के बीच की भौगोलिक दूरी उनके परिवारों व वंश के सामाजिक दर्जे का सूचक मानी जाती थी।

स्व-चयनित बनाम व्यवस्थित विवाह

कुछ अन्य फ़र्क़ भी हैं। अंतर्जातीय विवाहों में स्वः चुनाव के साथ-साथ जाति के अंदर विवाह के नियम का भी उल्लंघन होता है। 'अनुपयुक्त' गोत्र विवाहों में ऐसा होना ज़रूरी नहीं है क्योंकि सजातीय होने पर हो सकता है कि वर-वधू के माता-पिता शादी तय कर दें। लिहाज़ा इन विवाहों में परिवार, गांव व समाज की स्वीकृति होती है और सार्वजनिक जश्न के माध्यम से इन्हें सामाजिक वैधता भी मिल जाती है। ये शादियां *हिंदू विवाह कानून* के तहत भी जायज़ मानी जाती हैं। यह बड़े कौतूहल की बात है कि इस तरह के काफी विवाहों को साल भर बाद, जब महिला गर्भवती हो या जब बच्चे का जन्म हो चुका हो, निशाना बनाया गया जाता है। सवाल यह है कि आख़िर इन अनियमितता के विरूद्ध खाप पंचायत की नींद इतनी देर के बाद ही क्यों खुलती है?

इन विवाहों पर खाप विरोध के सवाल पर विभिन्न तर्क मौजूद हैं। अंतर्जातीय विवाह के मामले में जाट समुदाय का आक्रोश अधिकतर दलितों के प्रति है जो जाट लड़कियों से प्रेम विवाह कर लेते हैं या करने की कोशिश करते हैं। इन शादियों के प्रति हिंसा को आसानी से समझा जा सकता है क्योंकि शैक्षिक व रोज़गार सुविधाओं से सम्पन्न बनने वाली 'अछूत' जातियों का यह व्यवहार प्रधान जाट समुदाय को एक चुनौती के रूप में नज़र आता है। कुछ इसी तरह का प्रतिक्षेप देश के अन्य हिस्सों में भी दिखाई पड़ता है जहां दलितों ने अपने हालात बेहतर बना लिए हैं और मुख्यधारा समाज में प्रवेश करके वे समाज द्वारा थोपी गई जातिगत विकलांगताओं को चुनौती दे रहे हैं।

दक्षिण भारत में कमीज़ पहने, मोटरसाइकिल पर सवार दलितों को निशाना बनाया गया है। हरियाणा के दलित इस लिहाज़ से जाट समुदाय को एक बुनियादी चुनौती दे रहे हैं— उनकी बेटियों से विवाह का प्रयास करके वे जाति वर्जन पर सीधा प्रहार कर रहे हैं। जैसा कि हम जानते हैं जाति की सुरक्षा के लिए विवाह सबसे सशक्त व अंतिम बुर्ज है। 'जाति बहिर्विवाह' के ज़रिए जाति वर्जन सुनिश्चित किया जाता है। इसी तरह परिवार व विवाह के अंतरंग दायरे सांस्कृतिक-सामुदायिक मूल्यों को सहेजकर स्थाई बनाते हैं और इन मूल्यों पर कोई प्रत्यक्ष या परोक्ष धमकी का प्रत्युत्तर संबंद्ध समुदाय हिंसक प्रतिक्रिया से देता है।

यह समझना ज़रूरी है कि सगोत्र व 'अनुपयुक्त' गोत्र विवाहों के प्रति खाप पंचायत के फतवे करीब दस वर्ष से ही उभरे हैं और हाल ही में इनमें तेज़ी आई है। नृशंस हत्याएं, गांव निकाला व सामाजिक बहिष्कार जैसी सज़ाएं जो जोड़ों व उनके परिवारों पर थोपी जा रही हैं ने कुछ नागरिक समाज निकायों को इन त्रस्त दम्पतियों के पक्ष में लाठियां उठाने के लिए प्रेरित किया है। *जनवादी महिला समिति* जैसे संगठनों का सहयोग तथा सम्मान जनित हत्याओं के विरुद्ध एक नया कानून पारित करके (भारतीय दंड संहिता की धारा 300 में एक पांचवा खण्ड जोड़कर) खाप पंचायतों पर लगाम कसी जाने के सरकार के प्रस्ताव ने इन पंचायतों के आन बचाने के इरादों को दृढ़ता प्रदान की है। नतीजतन, ये अब और अधिक आक्रामक रुख इख़्तियार करके *हिंदू विवाह कानून* में संशोधन की मांग उठा रही हैं जिसमें स्थानीय गोत्र संबंधी मानकों को नज़रअंदाज़ करने वाले विवाहों को अवैध करार देने का प्रस्ताव भी है। हाल ही में नवीन जिंदल जैसे 'आधुनिक' पक्षों ने भी खाप पंचायतों की *हिंदू विवाह कानून* में संशोधन की मांग का समर्थन करके सरकार तक पहुंचाया है।

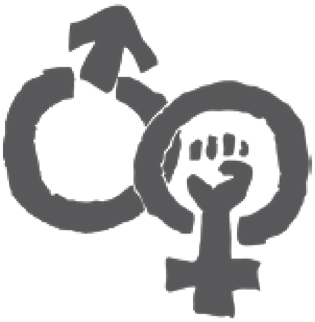

विषम लिंग अनुपात व महिलाओं पर नियंत्रण

विभिन्न तरह के विवाहों पर खाप पंचायत की कार्यवाई तथा उनके विरुद्ध उसके विषाक्त स्वरूप के समयमापन व तीव्रीकरण को समझने के लिए हमें सतही स्पष्टताओं, जो बतौर रिवाजी मानकों व समुदाय के 'मान के उल्लंघन' आंके जाते हैं से आगे देखना होगा। एक महत्वपूर्ण पहलू है हरियाणवी समाज में व्याप्त लैंगिक असंतुलन जो गिरते लिंग अनुपात और लड़कियों के कम जन्म के कारण और अधिक बढ़ता जा रहा है। जनसांख्यिकों के अनुसार हरियाणा व पश्चिमी उत्तर प्रदेश के जाट 'पुरुष विवाह विवशता' से ग्रस्त हैं। गिरते लिंग अनुपात (1000 पुरुषों पर 800 महिलाएं) के कारण 'पुरुष विवाह विवशता' की समस्या संग्रहित हो जाती है; कम स्त्री सहगणों के जन्म से बिन-ब्याहे पुरुषों की तादाद हर साल बढ़ती चली जाती है और जितनी कम स्त्रियां उतने अधिक बिन-ब्याहे पुरुष और उतना अधिक असंतुलन। आज के हरियाणवी समाज में हर चौथे पुरुष के अविवाहित रह जाने की संभावना है और अंतिम चारे के तौर पर असम, पश्चिम बंगाल, केरल तथा अन्य राज्यों से वधुएं लाई जा रही हैं।

यह स्पष्ट है कि विवाह योग्य लड़कियों के अभाव में हरियाणा व उत्तर प्रदेश के जाट अपने समुदाय की विवाह योग्य लड़कियों को सख्त नियंत्रण में रखना चाहते हैं। विवाह को लेकर असंख्य रिवाजी कानून इन वधुओं की उपलब्धता की समस्या को और अधिक बढ़ा देते हैं। जैसे पिता की ओर से सात (या पांच) पीढ़ियों तथा माता की ओर से पांच (या तीन) पीढ़ियों के वंशज के बीच विवाह पर प्रतिबंध है यानी इन श्रेणियों में पड़ने वाले सभी गोत्र विवाह के लिए 'अनुपयुक्त' होंगे। इसके बाद 'गांव-क्षेत्र बहिर्विवाह' के चलन कुछ और विवाह योग्य साथियों को 'योग्य' श्रेणी से बाहर कर देंगे। और अंत में 'जाति बहिर्विवाह' का रिवाज अन्य जातियों के साथ विवाह संबंध बनाने के लिए वर्जित होंगे। इन सबके कारण जाट जाति की कुछ ही लड़कियां विवाह के लिए बचती हैं और इनके लिए एक प्रतिस्पर्धा छिड़ जाती है। चूंकि हर गोत्र समूह के अपने निश्चित नियम है लिहाज़ा अगर कोई बाहरी व्यक्ति इस समूह पर 'घात' लगता है तो जवाबी प्रतिक्रिया आक्रमक होती है। इसलिए इस तरह की 'अनुपयुक्त' शादियों के विरुद्ध फतवे जारी करके खाप पंचायतें अपने गोत्र समूह की जायज़ विवाह योग्य लड़कियों को सुरक्षित रखना चाहती हैं। यह सच्चाई की एक दलित पुरुष जाट समूह की कम होती लड़कियों में से किसी एक से विवाह करने की कोशिश कर रहा है जातिगत बदले की भावना को और हिंसक व जानलेवा बना देती है।

घटता लिंग अनुपात व वधुओं की कमी सीधे तौर पर गोत्र कट्टरता से प्रभावित है यह इस बात से भी साबित होता है कि राजस्थान व हरियाणा के काफी समुदायों ने गोत्र मानकों में ढील छोड़ दी है। पर खाप पंचायतों की

बढ़ती आक्रामकता के सामने इस ढिलाई को लम्बे दौर तक कायम रखना मुश्किल प्रतीत हो रहा है।

विवाह और गोत्र की राजनैतिक आर्थिक व्यवस्था

खाप पंचायत कार्यवाई के समयमापन व तीव्रीकरण की गुत्थी को बदलते आर्थिक व राजनैतिक परिवेश तथा विवाह संबंधों पर उसके प्रभाव से भी सुलझाया जा सकता है। उत्तर भारतीय विवाहों में यह चलन है कि लड़की की शादी ऊंचे दर्जे वाले कुल में की जानी चाहिए तथा लड़के का दर्जा लड़की से ऊंचा होना चाहिए। तीव्रता से बदलते समाज में लड़कों की काबलियत महज़ ज़मीन से नहीं बल्कि शिक्षा व अच्छी नौकरियों से आंकी जा रही है। आज के दौर में जातिगत दर्जा नहीं बल्कि नौकरी व शहरी स्थापन अधिक मायने रखते हैं। शहरों में जान-पहचान, व्यवसाय व सरकार अब नई सामाजिक पूंजी है जो सामाजिक गतिशीलता के ख्वाब पूरे करने के लिए उपयोगी है। इसके अलावा गोत्रों की पारम्परिक श्रेणीबद्धता (खासकर वंशों की) शिक्षा व रोज़गार की आर्थिक व्यवस्था से ढुलमुल हो रही है। सरकारी नौकरियों के लाभ से समाज में धन ओहदे व सत्ता के स्रोत के रूप में ज़मीन की कीमत कम हो रही है। पुराने समय में उच्च प्रतिष्ठा के लिए वंशों के बीच जद्दोजेहद मौजूद ज़रूर थी परन्तु ज़मीन की मिल्कियत सामाजिक दर्जे में एक स्थिरता दिलाती थी। अब जैसे-जैसे वंश इन नए पैमानों के अनुसार श्रेणीबद्धता संरूपण करते हैं वैसे-वैसे नये पैमानों के आधार पर बनाये विवाह संबंध उनके बीच उतार-चढ़ाव और परिवर्तन लाने में सहयोग करते हैं।

इसके साथ ही स्थानीय हरियाणवी औरतों की कमी के कारण लड़की व उसके माता-पिता 'चुनाव करने वाले' बन जाते हैं। फिर भी लड़कियों के विवाह पर कड़ा नियंत्रण है। आखिरकार परिवार की इज़्ज़त का दारोमदार औरतों के ऊपर ही तो है! हालांकि हरियाणा व उत्तर प्रदेश के पुरुष वधुओं के अभाव में किसी भी क्षेत्र या जाति की लड़की से शादी करने के लिए राज़ी हो जाते हैं परन्तु अपने राज्य और समुदाय की औरतों को वे सख्त निगरानी में रखते हैं। उनकी शादी 'उपयुक्त' और 'उचित' लड़कों के साथ ही होनी चाहिए। अगर कोई लड़का हर लिहाज़ से ठीक-ठाक होता पर 'अनुपयुक्त' गोत्र का है तो माता-पिता गोत्र संबंधी मानकों का उल्लंघन करके अथवा उन्हें नज़रअंदाज़ करके शादी पक्की कर देते हैं। यहां व्यक्तिगत परिवारों के फैसले गोत्र मानकों को चुनौती देते हैं और किसी अन्य गोत्र वालों का उस लड़की से विवाह करने के अधिकार की अवहेलना करते हैं। इसी तरह एक कुलीन वर जिसका गोत्र लड़की के परिवार से नीचा है एक 'नौदौलत' समझा जाता है और उसका चुनाव करने वाले वधू परिवार पर भी दोषारोपण किया जाता है क्योंकि उन्होंने 'वैध व अधिकारी कुंवारे' की जगह किसी अन्य का चुनाव किया है। इस तरह के विवाह को गोत्र एकजुटता और गोत्र पदानुक्रम को चुनौती देने का दोषी माना जायेगा।

हरियाणवी समाज की नज़दीकी जानकारी होने के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इन मानकों का उल्लंघन करने वाले दबंग परिवार अक्सर छूट जाते हैं परन्तु कम सशक्त परिवारों (विशेषतः वर पक्ष) को खाप पंचायतों का सामना करना पड़ता है। कम ताकत वाली खाप पंचायतें "बागी" वर या वधू के माता-पिता की पैरवी करने में असमर्थ होती हैं। इन विवाहों को निशाना बनाने का समय इस बात पर निर्भर करता है कि कब यह महसूस किया गया है कि 'वंश की प्रतिष्ठा' को सीधी चुनौती दी गई है जो इन मामलों पर देर से की गई प्रतिक्रिया का भी एक महत्वपूर्ण कारण है।

खाप पंचायतें अपनी पुरानी साख व वैधता खो चुकी हैं- पंचायती राज संस्थानों व *हिंदू विवाह कानून* ने विवाहों संबंधी मामलों में उनकी सत्ता कम कर दी है— ये उनकी हठधर्मी के महत्वपूर्ण कारण हैं। ये कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि इन पंचायतों के नेता वे बुजुर्ग होते हैं जो सामाजिक व्यवस्था को नियंत्रित रखने में अपनी महत्ता और ताकत दोनों खो चुके हैं। स्थानीय समाज पर अपनी सत्ता पुनर्स्थापित करने में उन्हें ज़्यादातर उन दुर्भाग्यशाली नौजवानों का सहयोग मिलता है जो कम-शिक्षित, बेरोज़गार व वधू पाने के लिए बेहद आतुर हैं।

हरियाणवी समाज बेटियों को खत्म करने वाले अपने व्यवहार को नकार रहा है। निरन्तर गिरते लिंग अनुपात स्त्री भ्रूण के जाने-समझे व निष्ठुर खात्मे का सूचक है। फिर भी इस मुद्दे पर विमर्श कि नौजवानों को विवाह योग्य लड़कियां क्यों नहीं मिलती, बेरोज़गारी पर केंद्रित है, न कि औरतों की घटती संख्या पर। ये बेरोज़गार, अविवाहित पुरुष अपने दर्जे और साख को हासिल करने के लिए 'भटके' हुए लोगों को ताकत व मर्दानगी के बल पर नियंत्रित करने में लगे हैं। चाहे वह दलित से जातिगत बदला हो या विवाह के मामले में खाप पंचायत की हठधर्मी, हरियाणवी समाज का तनाव मूल्यों व मानकों में विभंग की ओर इशारा कर रहा है। इस लिहाज़ से अन्य उत्तर भारतीय राज्य भी हरियाणा से कोई खास पीछे नहीं हैं।

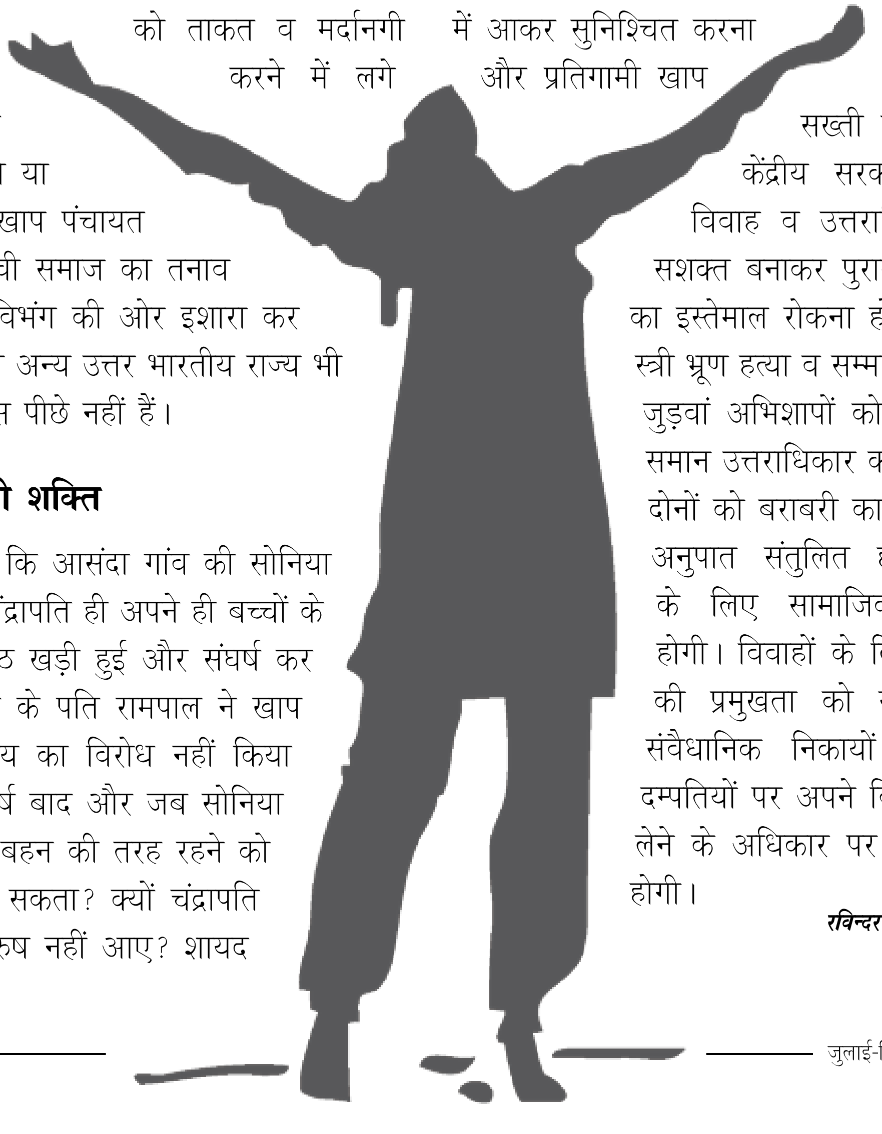

खाप पंचायत व स्त्री शक्ति

अंत में, ऐसा क्यों है कि आसंदा गांव की सोनिया और मनोज की मां, चंद्रापति ही अपने ही बच्चों के अधिकारों के लिए उठ खड़ी हुई और संघर्ष कर रही है? क्यों सोनिया के पति रामपाल ने खाप पंचायत के इस निर्णय का विरोध नहीं किया कि विवाह के एक वर्ष बाद और जब सोनिया गर्भवती है उन्हें भाई-बहन की तरह रहने को बाध्य नहीं किया जा सकता? क्यों चंद्रापति की मदद को कोई पुरुष नहीं आए? शायद हरियाणा की इस घृणित परिस्थिति में यही एक उम्मीद की किरण नज़र आती है। हरियाणा में स्त्री शिक्षा बेहतर हो रही है और आज काफी औरतें अपने पतियों से अधिक शिक्षित हैं। यहां के महिला संगठन भी सक्रियता से लैंगिक मुद्दों को सम्बोधित कर रहे हैं जिनके पास औरतें सहयोग व कानूनी सलाह के लिए आ सकती हैं। मीडिया भी युवा लड़कियों की मदद के लिए आगे आया है। पर क्यों कोई नौजवान अपनी बहनों या अपनी शादियां बचाने के लिए आगे नहीं आ रहे? सिर्फ़ इसलिए क्योंकि एक बेरोज़गार नौजवानों की भीड़, मरते हुए सामाजिक ढांचे के आखिरी अवशेष एकत्रित करने में जुटी है, वो ढांचा जो उनको मर्दानगी दिखाकर समाज में थोड़ा सा सम्मान पाने की सहूलियत देता है।

एक अंतिम बात-राज्य व केंद्रीय सरकारों से। खाप पंचायतों द्वारा जारी फतवों में राज्य सरकारों व उनके नेताओं की सहापराधिता निन्दनीय है क्योंकि उन्हें केवल वोट बैंकों से सरोकार है। केंद्रीय सरकार को अब बीच में आकर सुनिश्चित करना होगा कि दबंग और प्रतिगामी खाप पंचायतों के साथ सख्ती की जाये। राज्य व केंद्रीय सरकारों को संशोधित विवाह व उत्तराधिकार कानूनों को सशक्त बनाकर पुरातन रिवाजी कानूनों का इस्तेमाल रोकना होगा। ऐसा करने से स्त्री भ्रूण हत्या व सम्मान जनित हत्या, दो जुड़वां अभिशापों को रोका जा सकेगा। समान उत्तराधिकार कानून से बेटी व बेटे दोनों को बराबरी का दर्जा मिलेगा, लिंग अनुपात संतुलित होगा तथा औरतों के लिए सामाजिक प्रतिस्पर्धा कम होगी। विवाहों के लिए राष्ट्रीय कानूनों की प्रमुखता को स्वीकारने से अति संवैधानिक निकायों की परिवारों व दम्पतियों पर अपने विवाह संबंधी निर्णय लेने के अधिकार पर पकड़ भी कमज़ोर होगी।

रविन्दर कौर *आईआईटी दिल्ली में प्रोफेसर हैं।*

लेख

रिवाजी व्यवहार

दक्षिण एशिया में महिला हिंसा की रूपरेखा

राधिका कुमारास्वामी

सामिया का खाविंद एक हिंसक आदमी था। एक दिन तंग आकर वह घर से भाग गई। मायके जाकर उसने परिवार को बताया कि वह तलाक चाहती है। घरवालों को शक था कि सामिया के किसी और से नाजायज़ संबंध हैं पर उसकी दृढ़ता देखकर घरवालों ने कहा कि वे उसके साथ हैं। उसकी अम्मी, चचाजान और एक अजनबी वकील के पास मामले पर सलाह लेने आये। अचानक अजनबी ने पिस्तौल निकाली और सामिया को गोली मार दी। फिर उसने पिस्तौल वकील की कनपटी पर रख दी। दफ़्तर के सुरक्षाकर्मियों ने अजनबी को मार गिराया पर सामिया की मां व चाचा दफ़्तर की एक मुलाज़िमा को अगवा करके भाग गये। ख़ैर मुलाज़िमा को तो किसी तरह छुड़ा लिया गया परन्तु पुलिस ने इस मामले में कुछ भी करने से इंकार कर दिया। उनका कहना है कि ये 'कारो-कारी' का मसला है।

औरतों के प्रति हिंसात्मक रिवाजी व्यवहारों पर कानून की विफलता विशेष रूप से दिखाई देती है। औरतों के साथ होने वाले हिंसात्मक रिवाजी व्यवहारों की सबसे बड़ी संख्या दक्षिण एशिया क्षेत्र में पाई जाती है। इन व्यवहारों की अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आलोचना के प्रति स्थानीय प्रतिक्रिया मिली-जुली है। कुछ का विचार है कि ये एक आंतरिक मामला है और दुनिया को इससे कोई सरोकार नहीं है। कुछ मामलों को वैधता सांस्कृतिक संरचनाओं के नाम पर मिलती है जिनकी आलोचना या उनको खत्म करने की कोशिशों को पश्चिमीकरण और उपनिवेशतावाद की अहंकारी विरासत के तौर पर देखा जाता है। यद्यपि इन समाजों में महिला संगठनों ने इन मुद्दों को उठाया है और इनको दक्षिण एशिया में महिलाओं के निम्न दर्जे के सबूत के रूप में पेश भी किया है। ये रिवाजी व्यवहार उन अंतर्राष्ट्रीय ज़िम्मेदारियों से निरन्तर संघर्षरत रहते हैं जो दक्षिण एशिया के

राष्ट्रों ने अपनी मर्ज़ी से उठा रखी हैं। इन पर लगा पश्चिमीकरण का आरोपी दावा भी खोखला साबित होता है क्योंकि इनमें से कई समाज तीव्रता से भौगोलिकरण की ओर बढ़ रहे हैं तथा संस्कृति का सवाल केवल औरतों के निचले दर्जे के लिए महत्वपूर्ण दिखाई पड़ता है। निजी व सार्वजनिक के बीच द्विविधता का दक्षिण एशिया में एक खास अर्थ है- विद्वानों का दावा है कि निजी के मायने 'पूर्वी', 'आध्यात्मिक' व 'औरतों के अधिकार-क्षेत्र' से है। रिवाजी व्यवहारों में परिवर्तन का अर्थ 'निजी' दायरे का बदलाव है और इस लिहाज़ से यह दक्षिण एशियाई समाज के 'पूर्वी व आध्यात्मिक' स्वरूप को चुनौती देता है। इसलिए हिंसक रिवाजी व्यवहारों को मिटाने के प्रयासों को स्थानीय विरोध झेलना पड़ता है।

दक्षिण एशिया का एक रिवाजी व्यवहार जिसे सबसे ज़्यादा अंतर्राष्ट्रीय तवज्ज़ो मिली है वह है 'सम्मान जनित हत्या'। सामिया सरवर मामले ने अंतर्राष्ट्रीय

स्तर पर एक बवाल मचा दिया था। एशिया में सम्मान के नाम पर होने वाली हत्याओं में व्यभिचार की दोषी औरतों की परिवारवाले हत्या कर देते हैं। औरतों का कत्ल, बलात्कार का शिकार होने पर, 'अनुपयुक्त' पुरुष से प्रेम संबंध होने पर भी किया जाता है; यानी कोई भी ऐसा भावनात्मक या यौनिक व्यवहार जो परिवार की पुरुष प्रधान पितृसत्तात्मक सत्ता को भंग करे। सम्मान की रक्षा के लिए, औरतों की हत्या करने का हक़ परिवार के मुखिया के पास होता है, एक मज़बूत जड़ों वाली परम्परा है जिसे परिवार की औरतें भी स्वीकारती हैं। परिणामस्वरूप यह रिवाजी व्यवहार मज़बूती से कायम है और इन मामलों में पुलिस अभियोजन बेहद कमज़ोर होता है।

दक्षिण एशिया से संबंद्ध एक अन्य रिवाजी व्यवहार है 'वधू दहन'। 1990 में 'वधू दहन' अपने चरम पर था, 1983 में 437 मौतें, 1991 में 4856 जो 1993 में बढ़कर 5582 तक पहुंच गई थी। और ये उन मामलों की गणना है जिनकी पुलिस में रिपोर्ट की गई थी। 1980 में दिल्ली शहर में हर बारह घंटे में एक गृहिणी 'दहेज' के कारण अप्राकृतिक मृत्यु का शिकार होती थी।

यद्यपि कुछ समुदायों में दहेज ज़मीन व अचल सम्पत्ति से जुड़ा होने के कारण महिलाओं को सुरक्षा प्रदान कर रहा था, परन्तु आधुनिक समाज में यह एक परम्परागत व्यवहार का विकृत लक्षण बन गया है। आजकल दहेज में सबसे पहले वधू के लिए कपड़े, गहने, घर का सामान दिया जाता है। दूसरे नम्बर पर वर के लिए शौक का सामान जैसे घड़ी, सोने की ज़ंजीर, महंगे कपड़े व तीसरे नम्बर पर वर के नाम अचल सम्पत्ति, टीवी, फ्रिज, विडियो आदि आधुनिक उपकरण शामिल होते हैं। ये सभी सामान व नकदी वर को उपहार स्वरूप दिया जाता है और जो एक पत्नी की मौत होने पर दूसरी शादी में दोबारा मिल जाता है।

'वधू दहन' के कारणों में दहेज, पति-पत्नी के बीच तालमेल की कमी, तलाक़ कानूनों की कट्टरता अथवा बेटे की चाह कुछ भी हो सकते हैं। हाल ही में *भारतीय दंड संहिता* में दहेज हत्या के मामलों से निपटने के लिए संशोधन किए गए हैं। 1986 से पति व परिवारवालों के लिए कम से कम सात वर्ष से लेकर उम्रकैद तक का प्रावधान है अगर औरत की मृत्यु जलने, चोट, दहेज क्रूरता या अन्य अप्राकृतिक कारणों से हो जाती है। इन कानूनों के कार्यान्वयन से दहेज हत्याएं कुछ कम हुई हैं हालांकि दक्षिण एशिया के कुछ क्षेत्रों में ऐसी घटनाएं अभी भी घटती है।

दक्षिण एशिया के कुछ हिस्सों में औरतें 'तेज़ाब हमलों' का शिकार होती हैं। बंगलादेश में 1998 में 200 औरतें इसका शिकार बनीं। 'तेज़ाब हमले' अक्सर औरतों पर परिवार की इज़्ज़त बचाने के लिए परिवारवालों द्वारा या फिर प्रेम प्रस्ताव ठुकराने का बदला चुकाने के लिए बाहर वालों द्वारा किए जाते हैं। बंगलादेश में इन पर काफी ध्यान दिया गया है परन्तु दक्षिण एशिया के अन्य हिस्सों में ये अभी भी जारी हैं। इनका उन्मूलन तब तक मुश्किल है जब तक औरतों के भावनात्मक और यौनिक व्यवहार को उन पुरुषों के सम्मान के साथ जोड़कर देखा जाता रहेगा जो उनके अंतरंग संबंधी हैं।

भारत के कुछ हिस्सों में प्रचलित परम्पराओं में 'सती' एक अन्य प्रथा है जिसे अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उठाया गया है। अस्सी के दशक में रूपकंवर सती कांड ने राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर काफी बवाल मचाया था। कुछ विद्वानों का मत है कि 'सती' एक पत्नी का अपने पति के लिए शौर्य का प्रतीक है और इस 'गौरव मृत्यु' को नकारा नहीं जाना चाहिए। पर कुमकुम संगारी तथा अन्य अकादमिकों के विचार में 'सती' अक्सर ज़ोर-ज़बरदस्ती के हालातों में की जाती है क्योंकि औरतों के जीवन का कोई मोल नहीं समझा जाता। इसके प्रति उदारता का रवैया होने से काफी परिवार औरतों को इस परम्परा के पालन के लिए बाध्य करेंगे जिससे विधवा होने पर उनकी देखभाल न करनी पड़े। इसी वजह से महिला संगठनों ने 'सती' के व्यवहार और विचारधारा दोनों का विरोध किया है। सौभाग्य से भारत

ने इस पर दृढ़ प्रतिक्रिया दिखाई। संसद ने *सती प्रथा महिमामंडन विरोधी कानून* के तहत इस प्रथा को गैर कानूनी करार दिया। तब से केवल इक्के-दुक्के मामले ही सामने आये हैं जो आपराधिकरण के महत्व की ओर इशारा करते हैं। परन्तु रूपकंवर के परिवार को समुदाय के मुखियाओं ने बाइज़्ज़त बरी कर दिया जो इस सच्चाई का संकेत है कि औरतों के प्रति होने वाली रिवाजी हिंसाओं में समुदाय शायद ही कभी किसी को सज़ा सुनाता हो।

'सती' की परम्परा हमें याद कराती है कि विधवाओं के प्रति हिंसा और भेदभाव दक्षिण एशिया का एक रिवाज है। 'सती' के अलावा 'डायन प्रथा' भी इसी कड़ी का हिस्सा है। बिहार में हर साल दो सौ औरतों को डायन करार देकर जायदाद संबंधी संघर्षों के कारण ससुराल में मार दिया जाता है। आर्थिक स्वायत्तता व सुरक्षा का अभाव इन विधवाओं के हालात काफी मजबूर बना देता है। मनहूस कहलाई जाने वाली, सामाजिक बहिष्कार और भेदभाव की गिरफ़्त में ये औरतों हिंसा सहने को बाध्य होती हैं अगर उसकी मौजूदगी परिवार के संसाधनों को शक्तिहीन बनाने लगे। कुछ मामलों में सांस्कृतिक आड़ में अनचाही औरतों को परिवार से अलग रखकर भी मरने को मजबूर कर दिया जाता है। अपराधी न्याय प्रणाली इन मज़लूम विधवाओं की मौत के लिए ज़िम्मेदार परिवारों को कोई सज़ा नहीं देती।

दक्षिण एशिया का एक अन्य रिवाजी व्यवहार जो महिला अधिकारों का हनन करता है वह है 'विवाह'। कुछ दक्षिण एशियाई समुदायों में पुरुष से यह अपेक्षित है कि वह अपनी पंसद की लड़की का पीछा करे, उसका बलात्कार करे और फिर उससे विवाह करे। श्रीलंका के *वेद्दा समुदाय* और भारतीय *भीलों* में ये परम्परा मौजूद है। श्रीलंका के अटॉर्नी जनरल ने यह विज्ञप्ति जारी की, कि वे किसी भी युवा *वेद्दा* पुरुष के ऊपर बलात्कार का आरोपी होने पर भी कार्यवाई नहीं करेंगे चाहे शिकायत लड़की ने ही क्यों न की हो। बलात्कार के माध्यम से शादी उस विचारधारा का हिस्सा है जिसके अनुसार औरत के साथ पहली बार यौन संबंध बनाने वाले व्यक्ति के ऊपर उससे शादी करने की ज़िम्मेदारी होती है। यह मुख्यधारा समाज का वह रिवाज है जिसमें लड़के के ऊपर उस लड़की से शादी करने का दबाव डाला जाता है। अंतर्राष्ट्रीय मानक और राष्ट्रीय संविधान की मांग है कि औरत के आत्म-सम्मान और अधिकारों का हनन करने वाले इन रिवाजी व्यवहारों पर अंकुश लगाया जाये और सामान्य आपराधिक प्रक्रिया इन मामलों में लागू की जाये।

दक्षिण एशिया की एक अन्य हिंसक परम्परा 'बाल विवाह' है। नेपाल में 40 प्रतिशत विवाहों में लड़कियों की उम्र चौदह वर्ष से कम होती है। पाकिस्तान का 'वत्ता-सत्ता' निकाह एक अन्य परम्परा है जो औरतों के प्रति हिंसात्मक है। इसमें औरत पुरुषों के बीच में अदला-बदली की वस्तु बन जाती है। दो औरतों का विवाह दो पुरुषों से अदला-बदली रिवाज के तहत किया जाता है। बारह वर्ष की रेशमा का 'वत्ता-सत्ता' विवाह दो परिवारों के झगड़े के फैसले के तौर पर हुआ था। विवाह की पहली रात को पति ने व्यभिचार का आरोप लगाकर उसे गोली मार दी। ये पारम्परिक विवाह 'मान' का प्रतीक होते हैं और समुदाय औरतों का दमन करता रहता है। दक्षिण एशिया में इसकी जड़ें इतनी गहरी हैं कि एकजुट प्रयासों के बगैर इनमें परिवर्तन लाना नामुमकिन है।

औरतों के प्रति रिवाजी हिंसात्मक व्यवहारों की नींव का संबंध 'बेटे की चाह' से जुड़ा है। अमर्त्य सेन ने तैथिक क्रम के ज़रिए यह दर्शाया है कि बालिका शिशु के साथ भोजन, शिक्षा व स्वास्थ्य के स्तर पर अत्याधिक भेदभाव किया जाता है। बीमार होने पर बेटों को अस्पताल ले जाया जाता है, बच्चियां लड़कों से अधिक कुपोषित हैं और केवल 15 प्रतिशत लड़कियां ग्रामीण प्राथमिक स्कूलों में पांचवी से आगे पढ़ती हैं। स्कूल दाखिले के मामले में लैंगिक अंतर भारत में 14 प्रतिशत, नेपाल में 19 प्रतिशत व पाकिस्तान में 24 प्रतिशत है। बेटों की चाह व बेटियों के प्रति भेदभाव आजीवन चलता रहता है और औरतों का जीवन हिंसा और भेदभाव के जीवन चक्र में पिसता जाता है।

ऊपर रेखांकित किये गये रिवाजी व्यवहारों की मांग है कि राज्य एक मानकीय ढांचा स्थापित करे जो इन व्यवहारों की निंदा करते हुए इनका कार्यान्वयन करने वाले पक्षों के विरुद्ध आपराधिक कार्यवाई करे। पर अधिकांश समय राजनैतिक अलोकप्रियता के डर से राज्य महिलाओं की हिंसा से सुरक्षा के लिए ज़रूरी अंतर्राष्ट्रीय मानकों पर ज़ोर देने से कतराते हैं। नतीजतन, हिंसा एक 'सामान्य' 'रोज़मर्रा का आम हिस्सा' बन जाती है और सब ओर एक मूक स्वीकृति घर कर लेती है कि हिंसा करने वालों के ख़िलाफ़ सख्त कार्यवाई नहीं की जानी चाहिए। हिंसा का यही 'प्रसामान्यीकरण' महिला हिंसा व विचारधारा का आपसी संबंध दिखाता है। हाल ही में बंगलादेश में किए गये एक सर्वेक्षण में अधिकतर मर्दों का दावा था कि एक 'दोषनिवारक' सज़ा के तौर पर पत्नियों के ख़िलाफ़ हिंसा सही कदम है। महिलाओं के प्रति हिंसा का 'प्रसामान्यीकरण' दक्षिण एशिया का एक अंधकारमय पक्ष है। यही प्रसामान्यीकरण पुरुषों को हिंसा को गलत समझने, औरतों को हिंसा का विरोध करने और आपराधिक न्याय प्रणाली को इंसाफ़ करने में अशक्त बना देता है।

एक दूसरा कारण जिसका दक्षिण एशियाई समाज में हिंसा के स्तर से सीधा संबंध दिखाई पड़ता है वह है औरतों में आर्थिक आत्म-निर्भरता और सशक्तता का अभाव। इसी आर्थिक सुरक्षा की कमी के चलते वे चुप रहकर हिंसा सहती रहती हैं। उत्तराधिकार कानून व व्यवहार, ज़मीन की मिल्कियत का अभाव, शिक्षा व गतिशीलता की कमी उन्हें ऐसे हालातों में कैद रखती है जिनसे बाहर निकलना मुश्किल लगता है। डेविड लेविनसन ने अस्सी देशों के अध्ययन से पाया कि औरतों के ख़िलाफ़ हिंसा के प्रमुख कारणों में आर्थिक आत्म-निर्भरता का अभाव सबसे अहम था।

दक्षिण एशिया समाज में मर्दानगी के मानक भी महिला हिंसा का वाजिब कारण है। कुछ खास समुदायों में हिंसा का संबंध 'मान-सम्मान' और 'मर्दानगी' की अभिव्यक्ति से है। पितृसत्तात्मक नियमों और अपेक्षाओं को चुनौती देने वाली औरतों को हिंसा का सामना करना पड़ता है। अगर हिंसा का सीधा अर्थ 'मर्द की तरह' बनने से है तो हिंसा का 'प्रसामान्यीकरण' होता है और ये सामाजिक रिवाजों और व्यवहारों का अहम हिस्सा बन जाती है। जब मर्द बनने का अर्थ होता है अपनी पत्नी को नियंत्रण में रखने और पालतू बनाने की क्षमता तब व्यवहार भी उसी लक्ष्य के अनुसार तय किया जाता है। गहरे पैठे ये मूल्य और मर्दाने रिवाजों में परिवर्तन लाने के लिए कई पीढ़ियों तक प्रयास जारी रखने होंगे जिससे ये मानक और अपेक्षाएं बदल सकें। इसके लिए नौजवानों के लिए दूसरे अहिंसक मर्दाने रिवाजों को प्रोत्साहन देना होगा। आधुनिक समय में कुछ इस तरह की परम्पराएं व व्यवहार दक्षिण एशिया में उभरे हैं परन्तु इन्हें स्थाई बनने में अभी काफी वक्त लगेगा।

मर्दानगी के मानकों के साथ ही औरतों के सही भावनात्मक और यौनिक बर्ताव का सवाल जुड़ा है। हिंसा का एक बड़ा रूप स्त्री यौनिकता से संबंद्व है। बलात्कार में यौन हिंसा, औरतों के व्यापार में यौन कर्म, यौन उत्पीड़न व कार्यस्थल पर भेदभाव, घरेलू हिंसा में पति के साथ यौन संबंध बनाने से इन्कार, के साथ-साथ सम्मान जनित हत्या, स्त्री जननांग विकृतिकरण जैसे रिवाजी व्यवहारों का स्त्री यौनिकता नियंत्रण से संबंध है। इसी कारण कुछ लोगों का मानना है कि महिलाओं को हिंसा से सुरक्षा के साथ-साथ प्रजनन अधिकारों की स्वीकृति व अन्य स्वायत्ताओं पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। यह अंतर्संबंध औरतों की हिंसा के डर से मुक्ति के हालात स्थापित करने के लिए महत्वपूर्ण है।

महिलाओं के ख़िलाफ़ हिंसा 'एचआईवी/एड्स' के सार्वभौमिक पहलू से भी जुड़ी है। 4.2 करोड़ एशियाई जनसंख्या एचआईवी ग्रस्त है, इसमें भारत दूसरे नम्बर पर है। यूएनएड्स के आंकड़ों के अनुसार भारत में 3.86 करोड़, पाकिस्तान में 74000, श्रीलंका में 7500, नेपाल में 34000 व बंगलादेश में 13000 एचआईवी संक्रमित लोग हैं।

इस क्षेत्र में औरतों को एचआईवी संक्रमण होने के कई कारण हैं। व्यापक गरीबी के कारण युवा लड़के व लड़कियां यौन कर्म से जुड़े हैं; यौन बाज़ारों में ग्राहक कंडोम इस्तेमाल करने से इंकार करते हैं। बाल श्रमिक लड़कियां भी अक्सर शोषण व यौन उत्पीड़न का शिकार होती हैं। विकास की कमी से नौजवान शहरों में पलायन करके झुग्गी-बस्तियों में अपने परिवारों के बगैर रहने लगते हैं। अकेलेपन के कारण असुरक्षित यौन संबंध इस बीमारी से संक्रमण का खतरा बढ़ा देता है। उपयुक्त स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी के कारण लोग सही समय पर यौन संक्रमण व एचआईवी

परीक्षण करवाकर इलाज नहीं कर पाते। काफी बड़ी संख्या में लोगों को एचआईवी से जुड़े खतरों की जानकारी नहीं है। संक्रमित पुरुषों की पत्नियां और साथी असुरक्षित यौन के लिए मना नहीं कर पातीं और नतीजतन संक्रमित हो जाती हैं। यौन शिक्षा व यौनिकता और यौन बीमारियों पर एक खुले माहौल में बातचीत के अभाव के कारण असुरक्षित यौन युवाओं की जीवनशैली का हिस्सा बना रहता है। शहरी क्षेत्रों में नशीली दवाओं के सेवन के लिए संक्रमित सुइयों का उपयोग भी एचआईवी संक्रमण के विस्तार का अहम् कारण है।

एचआईवी संक्रमित होने के बाद औरतों को भेदभाव और हिंसा का सामना करना पड़ता है। सार्वजनिक स्थलों, कार्यस्थल आदि पर भेदभाव अधिकतर अनभिज्ञता के कारण होता है। एचआईवी पॉज़िटिव महिलाओं तथा उनसे बच्चों तक पहुंचने वाले संक्रमण पर भी बहुत सीमित जानकारी उपलब्ध है। हालांकि सर्वोच्च न्यायालय ने एचआईवी संक्रिमत लोगों के हक़ों की सुरक्षा व भेदभाव रोकने के लिए कुछ निर्णय पारित किए हैं फिर भी दक्षिण एशियाई स्तर पर काफी कम कानूनी प्रावधान मौजूद हैं। कुछ देशों की सरकारों ने एड्स से निपटने के लिए राष्ट्रीय नीतियां भी विकसित की हैं- जैसे भारत की *राष्ट्रीय एड्स रोकथाम व नियंत्रण नीति।* परन्तु दक्षिण एशिया के अन्य देशों में एड्स की रोकथाम के लिए कोई खास कानून या समग्र कार्यक्रम तैयार नहीं किए गए हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने अपने एक अध्ययन में औरतों पर होने वाली हिंसा से समाज को पहुंचने वाले नुकसान व कीमत की एक रूपरेखा तैयार की है। इसमें अस्पताल, इलाज व पुनर्वास का खर्चा शामिल है। इसके अलावा बच्चों पर होने वाले दीर्घकालीन प्रभावों पर किए गए शोध अध्ययन से पता चला है कि हिंसा के साक्षी बच्चे अपने जीवनकाल में हिंसा का रास्ता अपनाते हैं। अक्सर औरतों के लिए हिंसा की सबसे बड़ी कीमत है 'खौफ़' या 'हिंसा का डर'। औरतें हिंसा के डर से घर के भीतर रहती हैं और समाज व सार्वजनिक विकास लक्ष्यों में अपना पूरा योगदान नहीं दे पातीं। हिंसा के इस उदासीन कारण का मनोवैज्ञानिक स्तर पर यह प्रभाव पड़ता है कि औरतों को दूसरे दर्जे का नागरिक समझा जाता है जो अशक्त हैं और जिन्हें सदैव सुरक्षा की ज़रूरत पड़ती है।

राधिका कुमारास्वामी *मानव अधिकार अधिवक्ता हैं। वे संयुक्त राष्ट्र संगठनों में विभिन्न पदों पर काम कर चुकी हैं।*

भेजो नबी जी रहमतें

ज़ेहरा निगाह

एक घर था, एक मैदान था
कुछ खेत थे, खलिहान था
वो घर में तन्हा तो न थी
हांडी थी चूल्हे पर चढ़ी
आटा गूंथा तैयार था
झूले में एक बच्चा भी था
पिंजरे में एक तोता भी था
और ताक में कुरान था
जिस पर उसे ईमान था

बच्चे को बहलाती थी वो
चूल्हे को सुलगाती थी वो
तोते को सिखलाती थी वो
अच्छे मियां मिठ्ठू कहो
'भेजो नबी जी बरकतें
भेजो नबी जी बरकतें
आले–नबी का वास्ता
आले–नबी का वास्ता'

एक दिन अचानक क्या हुआ
ठोकर से दरवाज़ा खुला
एक जानवर इंसा–नुमा
पंजों को लहराता हुआ
कमरे में आता ही गया
हर शय पे छाता ही गया
चादर जो सर से खिंच गई
कुरान का चेहरा ढक गई
रोटी तवे पर जल गई
हांडी उबल कर रह गई
बच्चे का झूला गिर पड़ा
तोता फड़क कर चीख उठा
'भेजो नबी जी रहमतें
भेजों नबी जी रहमतें
आले नबी का वास्ता
आले नबी का वास्ता'
पर कोई आया ही नहीं।

जेहरा निगाह *पाकिस्तान की मशहूर नारीवादी शायरा हैं।*

पगला गई है भागो!

मैत्रेयी पुष्पा

काम से उचटकर भागो की निगाह हथेली पर पड़ती है तो अपनी ही गली अनपहचान-सी मालूम होती है। रेत-भरी डगर पर दूधिया रोशनी की नदी बह निकली हो जैसे। कौन कहेगा कि यह हवेली जर्जर होकर चरमरा रही है, या ढुरऊ बखरी फूट जाने के कारण इसकी पौर में भैंस बंधने लगी है! आज की तो रंगत ही अलग है, जिज्जी के घर की।

जिज्जी भाई-बहनों में सबसे बड़ी सन्तान थीं और भागो सबसे छोटी। जिज्जी का ब्याह यहां महुआपुर में हुआ होगा माधोसिंह के साथ, पर भागो को अपने ब्याह की तो याद ही नहीं।

अपने गांव की कोई झांई-परछाईं भी मन में नहीं उतरती। एक दिन जिज्जी ज़ोर से रो उठी तो वह गिट्टे खेलते-से भागी थी। जड़ मूरख-सी निरखती रही बहन को। पड़ोस की औरतें जिज्जी को चुपाने में लगीं थीं, “काहे को रोऊती ठकुराइन? करम की हेटी हती अभागिन, सो कछु देखवो नहीं बदौ हतौ। इतेक लम्बी जिन्दगी फिर अपनी जात बिरादरी में दूसरे ब्याह की रसम-रीत...?”

“आंसू काढ़ जनमजली। आदमी नहीं रहौ और तें उजबक-सी हेर रही!” किसी जनाने हाथ ने उसके सिर पर थप्पड़ दे मारा।

वह सारे दिन कोठे में छिपी बैठी रही। फिर समय के अन्तराल ने बता दिया कि वह विधवा हो गयी। तब से आज तक उसका तन, उसका मन, सम्पूर्ण अस्तित्व विधवा है। हौंस-उमंग, पहनना-ओढ़ना, सजना-संवरना उसके लिए वर्जित है। औरतें उसे सगुन-सात-मंगल कार्यों से बचाती हैं वह स्वयं भी देख-बचकर निकलती है। ‘अठैन’ कर देने से सामने वाले के साथ उसका अपना मन भी दुखी हो जाता है।

सदैव जी-जान लगाकर जिज्जी के काम करती रही। जीजा के हुकुम पर दौड़ती रही। आम-जामुन तोड़ते, बहनोतों को गोद खिलाते उमर उतरने को हो आयी है अब तो।

आज शोभा देखने लायक है। लोग क्या जानते नहीं कि माधोसिंह की हवेली भले ही मिट्टी और ककरिया ईंटों की बनी हो, मगर पुरानी चाल की राजसी गरिमा से खड़ी है। इन दिनों तो रंग-रोगन पुतवा दिया है, सो नई लकदक से जगर-मगर है।

जब से गांव में बिजली आई है, शादी-ब्याहों की रंगत ही बदल गयी है। पहले की तरह नहीं हंडा ‘मूड़’ पै धर के चलो तो कहीं बीच रास्ते में ही गुप-गुप करके बुझ जाय। दिखइया, सुनइया, दूल्हा, पालकी सब वहीं-के-वहीं थिर।

भले ही ‘करंट’ सिंचाई के लिए न मिले, देर-सबेर मिले, पर ब्याह के समय तो कहकर रखना पड़ता है। किसी प्रकार ‘औसर’ की शोभा बनी रहे। ब्याह के खर्च में से ही सौ-पचास काढ़कर ऑपरेटर के हाथ पै धर दो, पंगत जिंवा दो बस्स!

सजावट भी कम नहीं करवायी जीजा ने! आतिशबाजी चले न चले, यह रंग-बिरंगे लट्टुओं पर थिरकती चमकनी-फुरहरी किसी आतिशबाजी से कम है क्या? चारों ओर अनार-से छूट रहे हैं-आंखों के सम्मुख बिखरते हुए चमकीले छींटे।

भागो की आंखें जगमगाने लगीं।

आज अनुसुइया होती तो देखती कि भाई के ब्याह पर उसका घर-द्वार कैसा! अनुसुइया का ध्यान आते ही भागो का मन बुझने लगा। कलेजे में हूक उमड़ आयी। हाथ में पकड़ा हल्दी का बेला गिरने-गिरने को हो आया।

इतने में जिज्जी आ गयीं, "भागो, तुम्हें दस जांगा देखि आये रुआंसौ मो बनायें काहे बैठीं इते? कपड़ा-उन्ना बदल डारौ। ऐसी ही गत बनाये रहैगी पई-पाहुनों के आगे, सिर्रिन।"

"जिज्जी को याद नहीं आ रही अनुसुइया?"

अब जिज्जी से क्या कहे कि उन्ना-कपड़ा देखें या कुटान-पिसान करवायें? तुमने तो कई दई कि मठोले की जनीं को टेर कैं करा लो काम! पर वो आबै तब न!

अब पहले की-सी बात रही है कहीं? वह चमरौटा के गिनकर दस चक्कर लगा आयी है तब कहीं जाकर आई। इतने में वह खुद ही फटक डालती गेहूं। और आ गयी यही क्या कम है। जिज्जी को सन्तोष हो गया।

अजब बहस बांध रखी है-इन्हें बुलाने की ज़िद है और उन्हें पैज पड़ गयी है न आने की। आपसी अहं की बात ही कहो। प्यार-प्रीत का बुलाना-चलाना हो तो आदमी सिर के बल चला आये। अब जीजा तौ अपनी ठकुराइस गांठे फिरते हैं।

मठोले की जनी बुरी थोड़े ही है, बात करो तो रस-भरी गगरी-सी छलकती है, सौ-सौ बेर पांव पड़ती है। दुःख तकलीफ में जान-प्रान से हाजिर। जो कुत्ता-कूकरा की तरह दुत्कारोगे तो फिर अपनी इज्जत-आबरू तो 'सबै' प्यारी है।

जिज्जी की बात पर वह खड़ी हो गयी। अपनी हल्दी-मसाले लगी धोती को झाड़ा और ठीक से पटली बिठाने लगी।

कपड़े बदलने का मन था ही नहीं, फिर भी ट्रंक खोला। धोतियां उलटती-पुलटती रही, "जे तो अनुसुइया ने पहरी थी केशकली की बरात के दिन। नई की नई धरी है। बस एक बार ही पहरी। और जे! जे स्यौरा-पहाड़ के मेला में पहर गयी थी। जाने की नजर लगी कि मोंड़ी भट्टिन बुखार में तपत आयी। जा सुपेद धुतिया कैसे लगत हती पहर कें मीरा बाई! जोगिन! बस तनपुरिया हाथ में लेवे की देर हती।"

उसने ट्रंक बन्द कर दिया, देर तक वहीं धरती खरोंचती रही। क्या करे मनिख! मन कुन्द हो तो पहनना, ओढ़ना रुचता है भला? होंस-हुलस, सोंख-मौज सब मन के खेल ठहरे। उमंग-उछाह, सुख-दुःख, जवानी-बुढ़ापा मन के भीतर उठती सोच की लकीरें ही तो हैं। अनुकूल पड़े तो बढ़े शरीर में भी पंख लगा दें और विपरीत पड़ें तो गद्दर जवानी भी रोगिनी-सी घिसटे।

आज के दिन होती न अनुसुइया, तो उर्र-फुर्र उड़ी फिरती। अब तक तो गांव के दस चक्कर मार आती। मठोले की जनी तो क्या पूरे चमरौटा और कछियाने को बुला लाती। अपने नरेश भइया के ब्याह की होंस में 'बिला-पपरिया' बांट आती। भाभी के रूप-सरूप की गाथा कहती डोलती।

कितनी बार तो उसी से झगड़ लेती कि अम्मा नाइन बुलाओ उबटन लगवाकर नहाना है। मेंहदी-बिन्दी का सवाल अलग। फिर चुरेलिन बुलाओ, चूड़ियां पहननी है। दर्जी काका की देहरी खूंद आती दसियों बार। चोली-घाघरे में बीसियों खोट निकालकर रख देती-यहां से ऊंचा, वहां से छोटा! कद की लम्बी थी सो चार की जगह पांच गज कपड़ा लगता था घाघरे में।

जब तक ठीक न होता बड़बड़ाती रहती, "फिटन ठीक नहीं है अम्मा!"

भागो के समक्ष इस बेवक्त अनचाहे चित्र क्यों उभरने लगे! ये यादें क्या इस विवाह की बेला में उमड़ने को थीं?

अनुसुइया पैदा हुई थी जिज्जी की पांचवीं सन्तान। पहले चार लड़के थे। वह सतमासी जन्म पड़ी, रोयी न कुलबुलायी। महतरानी ने बड़ी निश्चिन्तता से एक कोने में तसले समेत धर दीं, "मोड़ी जनमी है, मरी भई। द्वारे खबर कर दो।"

"चल अच्छी..." न जाने किसका जनाना स्वर था।

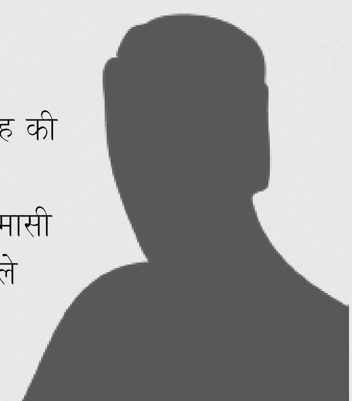

भागो तसले के पास जा बैठी। नवजात शिशु पर निगाहें अटकाये देर तक देखती रही। लगा कि सांस चल रही है। चिड़िया के हाल भये बच्चे की-सी कमज़ोर नन्हीं गरदन के ठीक पास आंखे गड़ा दीं। लगा कि अंडी-भर जगह में हरकत हो रही है-ऊपर-नीचे गिरती-धुक्, धुक्।

भागो उछल पड़ी। दौड़कर जिज्जी की खटिया के पास आ गयी, “जिज्जी, ओ जिज्जी! मरी नहीं है बिटिया, तेरौ कौल, जिन्दी है! फिंकवा न दिओ।”

जननी ने बहन की आवाज़ पर आंखें खोलीं और उदास हो गयी, मानो बेटी खत्म हो जाने से मिली विश्रान्ति में किसी ने खलल डाला हो।

“अब भागो, ते ही पाल लै, जा मोड़ी को।” दाई ने कठोरता से कहकर बित्तेभर की कमज़ोर काया को उसकी गोद में डाल दिया।

भागो क्या जाने, उसे तो बिटिया सपने में सोचा हुआ वरदान लगी। बांहों में सहेज ली। रुई के फाहे को गुड़ के घोल में डुबो-डुबोकर बच्ची को चटाती रही। उसके बाद बकरी का दूध, गाय का दूध...मां की रिक्तता पाटने का सामर्थ्य भर उपक्रम करती रही। बच्ची जब कभी गाय-बकरी के दूध से बीमार होने लगती तो भागो जिज्जी से विनती करती, “जिज्जी पिवा दो दूध! हां-हां जिज्जी। बिटिया भूख से तलफ रही। पिवा दो तनक।”

भागो को गीता के मंत्रों का ज्ञान भले न हो, साधना-उपासना का मरम उसकी भेदस-बुद्धि से बाहर की चीज है, और न उसे रामायण की चौपाइयां ही याद हैं, लेकिन उसने सती-अनुसुइया, सावित्री, नल-दमयन्ती और मदालसा की कथायें सुनी हैं। आख्यानों में अटूट श्रद्धा है, इसी कारण वह बिना नागा मंदिर जाती है।

‘अनुसुइया’ नाम उसे बहुत भाया। बिटिया का नाम अनुसुइया रख दिया।

अप्रसूता-कोख में ममता का अथाह सागर लहराने लगा। जीवन की एकांगी छाया में वह अनुसुइया को समेटकर कुनबा-कुटुम्ब वाली हो गयी। एक जीव से सारा संसार ऐसा भरा-पूरा! भागो को लगता कि उंगली पकड़कर बिटिया उसे अलौकिक ब्रह्मांड में उतार लायी है।

और दिन, महीने, साल सरकते-सरकते अनुसुइया नाजुक बेल-सी बढ़ने लगी। वह सराबोर हुई बेटी पर निछावर हुई जाती। वही क्या, पूरा मोहल्ला, गांव गमकता, जैसे कच्चे-आम फलने की ऋतु आ गयी हो। गोरी कचनार-सी बेटी के लम्बे बाल देखकर ठकुराइन सिहा उठती।

“भागो तें जानत हती कै ऐसी सुगढ़ निकरहैं मोंड़ी।”

“नज़र न लगइओ जिज्जी! तुम्हारी आंखन में नौन-राई!”

घर में भागो के वैधव्य की चर्चा होती, अनुसुइया की जन्म-कथा कही जाती, मगर अनुसुइया सबसे निष्प्रभाव हुई बेटी बनकर उसी की गोद में पड़ी रही।

“मौसी, ओ मौसी! बेसन-मसालों में ही लिपटी बैठी रहोगी या...। क्यों पागल हुई इन सबमें, समय नष्ट कर रही हो।” नरेश हंसता है।

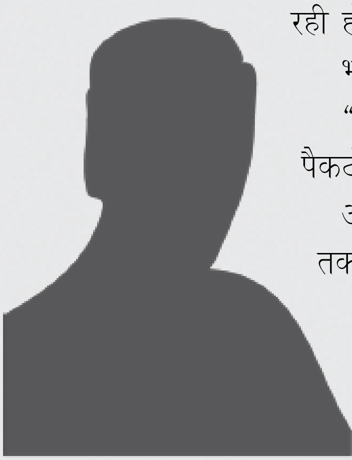

भागो की तन्द्रा टूटी। अरे वह तो यहीं बैठी रह गयी।

“मौसी पहले कहतीं तो तुम्हें इतना काम न करना पड़ता। शहर से थैलियों में बन्द आटा, पैकटों में बन्द मसाले-बेसन, सब आ जाता। तुम्हारे सारे झंझट खत्म।”

अब नरेश को कौन समझाये, कि भइया पांच-गांच का न्यौता है। दोपहर से आधी रात तक बीसियों पंगत बिठानी पड़ेगी। तुम्हारे थैली-पैकेट कितनी देर चलेंगे यहां?

ब्याह-कारज ही द्वारे पर लोग मुंह जुठारते हैं। वैसे कौन आता है किसी के घर खाने के लिए। सब अपनी नौन-रोटी पर हिम्मत रखते हैं।

“नरेश, तुम्हारी दुल्हन आबै तो खरीदबा दिओ जे अटांक-छटांक भरे मसाले के

पैकट और सेर-आध सेर की थैली चून की। भइया भागो की जिन्दगानी तौ जई काम के सहारे गुजरी है।"

नरेश का ब्याह क्या, बस दावत समझो। ब्याह तो कहता है कि 'कोरट-कचैरी' में हो गया। वह तो बड़े असमंजस में पड़ी है कि यह लड़का बरात लेकर किसके दरवाजे गया होगा? टीका किसने किया होगा? पांव-खराई कैसे हुई होगी और कलेऊ में नेग के लिए किससे झगड़ा होगा-जजों से?

पर जीजा कहते हैं कि नरेश का ब्याह हो गया। शहर के ब्याह ऐसे ही होते हैं-कागज पर दस्खत करके। जिज्जी भी कैसी हैं जो अन्धी की तरह जीजा की बात मान गयीं।

तिरवेनियां तो ऐन जिज्जी के सामने बता रही थी कि वह अपने डॉक्टर देवर के यहां ब्याह में शहर गयी थी। कहती थी कि ऐसा रौनकदार ब्याह तो उसने अपनी ज़िन्दगी में नहीं देखा, बैंड वाले खुद ऐसे सजे कि उनके सामने दूल्हा फीका लगने लगा।

उसने तो ऐसा खाना कभी नहीं खाया। गिनने पर आयी तो गिनती नहीं कर सकी-छप्पन भोगों से भी ज़्यादा रही होंगी खाने की चीज़ें। फिर जितनी मरज़ी हो उतनी लो। यहां की तरह नहीं कि लड्डू वाला एक बार पंगत के सामने फिर गया सो फिर गया। फिर बीस टेर मारते रहो, मजाल है कि दरसन दे जाये। पर शहर के लोग खाते ही कितना हैं? बस चिरइया की तरह एक-दो चोंच।

फिर जीजा और नरेश कहते हैं कि शहर के ब्याह कोरट में...

खैर, अब ब्याह वहां हुआ है, तो हुआ। कौन जिरह करे! पर जीजा ने तो पंडित के सामने, अगिनि के समक्ष उसके फेरे डालने की जरूरत ही नहीं समझी। जिज्जी इस बात पर खूब झगड़ी थी कि अब गांव में वे क्या मुंह दिखायेंगी? कुनबा-खानदान, पुरा-पड़ोस के बुलउआ-चलउआ तो उन्हें ही निभाने पड़ते हैं, सभी के उत्तर उन्हें ही दैने पड़ेंगे। अब माधोसिंह की मूंछ पकड़कर तो कोई पूछेगा नहीं।

जिज्जी ने बहुत रार मचायी तो जीजा ने फटकार डाली, "मूरख हो तुम! बखत के संग बदलबौ सीखो। नहीं तो कल्ल के दिना लड़का बुढ़ापै पै ठोकर मार जैहै। अकेली बैठी बिसूरत रहियो।"

"हओ, अब तुम्हें जरूल बंहगी में बैठार कें तीरथ करा ले आहै।"

"न करायै तीरथ, न बैठारै बंहगी। इज्जत-आबरू तौ रखि है! माधोसिंह के खानदान की सान-सौकत और बंस-बेल तो जई से रैहै। अपनी हठ पकरे रहें, दुसमनाई बांध लें! जा कहां की अकलमंदी भई।"

भागो ने सब सुना। बड़ी अकल है जीजा में!

"भागो, ओ भागो! अरी बाहर सिरकारी अहलकार आ गये, नाते-रिश्तेदार जुर गये, और तें इतै कोठा में जा बैठी। का कर रई इतै? सरबत पहुंचवा दो बाहर।"

जिज्जी की आवाज़ पर जैसे वह सोते से जागी हो। बालटी और स्टील का जग उठा लायी। यन्त्रवत् शरबत घोलने लगी।

भागो ने उझककर देखा-बाहर की बैठक में बहू सज रही है। जीजा ने खास प्रबंध किया है। कह रहे थे कि शहर की बेटी है, कुछ दुःख-तकलीफ़ न हो।

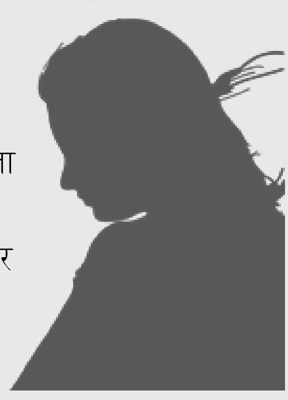

सजाने वाली भी बहू के संग शहर से आयी है। बहू साड़ी-कपड़ा, सिंगार-पटार अपने संग लायी है। गहने जिज्जी ने दिये हैं। जिज्जी खड़ी-खड़ी बता तो रही हैं कि दस्ताने का पेंच कैसे लगेगा, बेल-चूड़ी कैसे पहनी जायेंगी और तिदाना गले से चिपकाकर पहना जाता है। कर्धनी की कील आधे ठप्पे से जुड़ेगी।

बहू उत्फुल्ल है। वह गांव के गहनों को कैसे निरख रही है-हाथ में उछाल-उछालकर तोल रही है, "ओ गॉड, सो हैवी! ऐसे भारी! मेरी तो कलाई ही मुड़ जायेगी। पांव छिल जायेंगे।"

माधो जीजा सुनहरी अचकन और चूड़ीदार पाजामा पहने भीतर आये। कनखी से बहू के कमरे की ओर झांक गये। निछावर हुए जाते हैं। होंठों में असीसें भरी हैं। कितने खुश हैं जीजा।

जिज्जी को कहते हुए निकल गये हैं, "देख लो, अब कोई जा नहीं कह सकता कि माधोसिंह के बेटे ने ब्याह की बावत बाप से विरोध काहे करौ। सब के मौं बन्द हो जैहें। चन्दा की उजियारी लैकें आऔ है नरेश। पूरनमासी के चन्दरमा-सी खूबसूरत। गांव भर में है कनेऊ बहू ऐसी? अरे अब का बच्चा थोड़े ही है, बड़ौ है, समझदार। बई की हां में हां मिलावे में भलाई है। असहमति जता कें का कर लेते? वा की बला से! बैठे रहते अपने घर।"

पर आज भागो को क्या हुआ? ऐसी असमय, अनुसुइया की सुधियों से कलेजा भर आया! दइया, कोई कटार-सी चलती है आतमा में। जिज्जी भी क्या कहेंगी जलमजली सगुन-सात बेटे-बहू को देखकर सिहा नहीं रही। मनहूस सूरत बनाये डोल रही है।

उसने धोती के छोर से आंखें पोंछ डालीं। जिज्जी भूल गयीं अनुसुइया को? कुछ भी सही, कोख से जनी तो उन्होंने ही थी! पली तो उनके ही आंगन में...। शायद पति के डर से मुख भींचे हों। जीजा के सामने कौन ले सकता है अनुसुइया का नाम? कच्चा चबा जायेंगे।

द्वार की धजा बदल चुकी है-शामियाने में वर-वधू के लिए दो महाराजा कुर्सियां-लाल मखमल से जड़ी हुईं, सुनहरी हत्थों वाली, सिंहासन की तरह डाल दी गयीं। सामने कतारबद्ध कुर्सियां-ही-कुर्सियां। बगल वाले शामियाने में खाने का प्रबंध होगा। डोंगा-प्लेटों का असबाब। विभिन्न मसालों की उठती महक से गांव गमक उठा।

लोग चकित थे-देखो ठाकुर का दिल। बेटे की राजी में राजी! जी खोलकर खर्च किया है। कचहरी-कोरट के ब्याह में फूटी पाई भी दहेज नहीं। अपने घर से लुटाकर ही तमाशा देख रहे हैं। माधो ठाकुर ने बाप-दादों की बात रखी है सदा। भले ही जमींदारी टूट गयी, पर मजाल है कि नाक पर मक्खी बैठने दी हो।

पंडाल भर गया। दूल्हा-दुल्हन आ बैठे। औरतों के खड़े झुंड में घूंघटों के बीच वार्तालाप चल रहा था, "सिया जू लग रही है बहू! गुलाबी घाघरा-चुनरी में दूध-सी गोरी बहू! गहने कैसे खिल रहे हैं। सच्ची, सियारामजी की जोड़ी लग रही है।"

"लरका ने खुद्द पसन्द करी।"

रिश्तेदार, सगे-सम्बन्धी ऊंची स्टेज पर चढ़कर रुपया-पैसा उपहार दे आये। अपनी-अपनी औकात के हिसाब से और वर-वधू के साथ फोटू खिंचा आये। उसी सब की विशद चर्चा में लगे थे।

अन्त में माता-पिता की बारी थी।

पंडित जी की आवाज़ गूंजी, "माधो ठाकुर साहब, आशीर्वाद दो। बुला लो जनानखाने से भी। लड़का-बहू को असीसें।"

जिज्जी को भागो का ध्यान हो आया। घूंघट की ओट से इधर-उधर निगाह दौड़ायी। ऐसे में भी न जाने कहां, काम में हिलगी होगी। संग चलती, वाके का बेटा-बहू नहीं हैं? हमारे सो वाके! और है ही कौन, बिचारी कौ।"

जिज्जी को दिखी, दूर कोने में खड़ी गम्भीर मुद्रा बनाये किसी पाहुने से बातों में उलझ रही थी।

"ओ भौजाई, भागो को भेजिए जल्दी, वे ठाड़ी।" जिज्जी कहती हुई रेशमी चादर संभालती पति के पीछे चली गयीं।

स्टेज पर पहुंचकर ठाकुर ने दोनों हाथ बेटा-बहू के शीशों पर रख दिये।

फोटोग्राफर दौड़ा, "ठाकुर साहब, ऐसे ही, ऐसे ही खड़े रहो।"

क्लिक-क्लिक कैमरा चलने लगा कि ठीक उसी समय निशाना बांधा हुआ नुकीला पत्थर, विष-बुझे बाणों की तरह नुकीले और धारदार! पत्थर ही पत्थर।

अचूक सन्धान जैसे कोई बन्दूक से गोली दाग रहा हो। नाक और चेहरे के कटावों से रक्त की तेज़ धारें छूटने लगीं। खानदानी शेरवानी रंगकर लाल हो गयी।

आसपास के लोग भी घायल हो रहे थे। भगदड़ मच गयी। कोलाहल के बीच ठाकुर अचेत होकर कबके लुढ़क चुके थे। ठकुराइन विलाप करने लगीं।

अपने को बचाते तथा प्रक्षेण की दिशा को अनुमानते हुए लोग उसी ओर दौड़ने लगे। गली-मुहल्ला, घर-बखरी सब छान लिए, कोना-कोना खोजां पर कोई नहीं।

अंत में लाला की रोड़ी-पत्थर से भरी छत से जो पकड़कर लायी गयी, उसे देखते ही जिज्जी को गश आने लगा, "भागोऽऽ!!!"

भागो चीखती चली आ रही थी, विक्षिप्तों की तरह, "ओ अधरमी! अन्यायी! ठाकुर माधो! आज बेटा-बहू के स्वागत में मरे जा रहे हो तुम? खुशी में असपेर भरकर के गांव जिंवा रहे!"

"आज आंखें मूंद लईं? बेटा की गलती दिखाई नहीं दई तुम्हें? याद करौ माधो जे ही गलती तौ मेरी अनुसुइया ने करी थी बस जे ही! राच्छस जे ही।"

"तैने जो सराबी-जुआरी ढूंढो हतो सो बा ने पसन्द नहीं करौ। मास्टर जी से प्रीत हती, हमें बतायी हमारी बिटिया ने! भगवान् के अगाई मन्दिर में ब्याह करौ हतौ और फिर गरभ..."

"मास्टर आन-बिरादरी का हतो सो का? भलै मानस हतौ। और जा बहू जा की तुम आरती उतार रहे जा कौन-सी असल ठाकुर की जाई है। जा तैं हिन्दू तक नइयां। और चार महिना गरभ...! माधो फिर, आज दै दे बेटा को जहर जैसे मेरी अनुसुइया को...!!!"

वह चीखते-चीखते धरती पर लुढ़क पड़ी। मगर खींचने वाले खिंचेड़ते रहे दूर तक।

बाकी लोग अवाक्! अवसन्न! एक-दूसरे को उलझी हुई प्रश्नवाचक निगाहों से घूरते हुए...

धीरे-धीरे फुसफुसाहटें उभरने लगीं। उन सारी आवाज़ों के ऊपर रुदन में लिपटा हुआ ठकुराइन का स्वर तैरने लगा, "भागो सिर्रिन हो गयी।"

मैत्रेयी पुष्पा

हिन्दी साहित्य जगत की मशहूर लेखिका हैं।

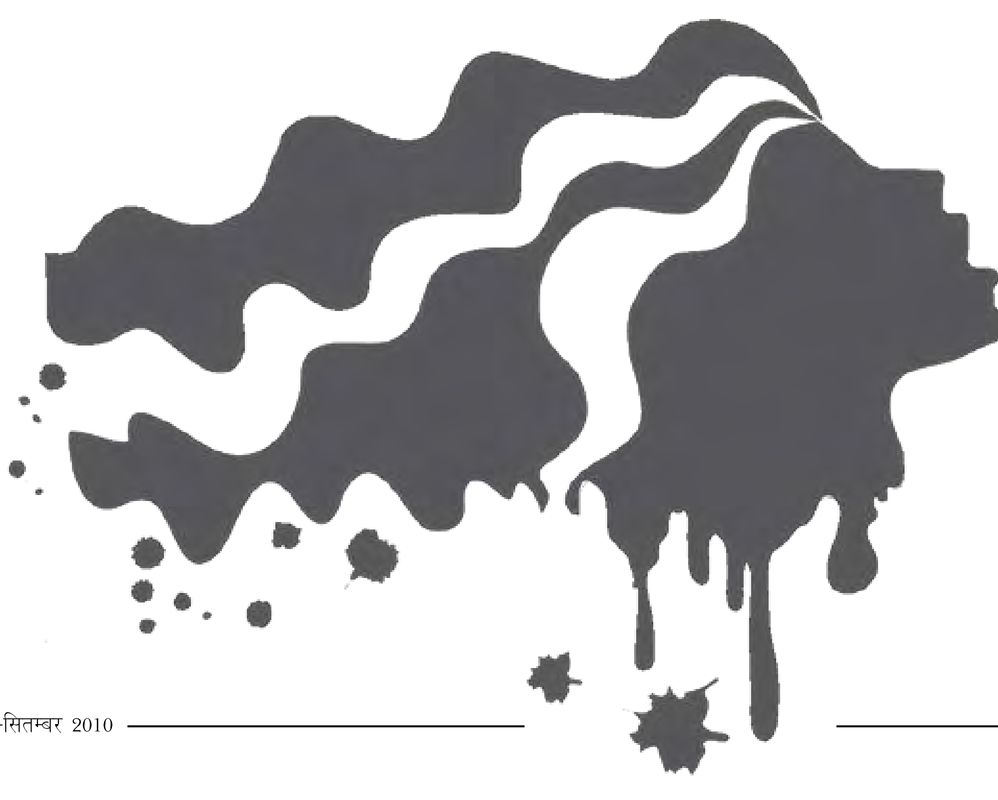

खाप पंचायतः दुःसाहस के लक्षण?

जागमती सांगवान

हरियाणा में तेज़ पूंजीवादी बदलाव के साथ-साथ प्रतिगामी सामंतवादी चेतना भी बढ़ रही है। जैसे-जैसे दलितों, महिलाओं व पिछड़ी जातियों के बीच शिक्षा व राजनैतिक जागरूकता बढ़ती है खाप पंचायतें भी यथास्थिति को बरकरार रखने के लिए संघटित होने लगती हैं। आजकल जाति पंचायतों द्वारा असंवैधानिक तरीकों से अवैध फैसले जारी करने के मामले भी तेज़ी से बढ़ रहे हैं। युवा जोड़ों, दलितों व प्रगतिशील विचारधारा वाले लोगों पर हमले भी बढ़ गये हैं।

हाल ही में करनाल सत्र अदालत ने मनोज-बबली 'सम्मान जनित हत्या' मामले में पांच दोषी अभियुक्तों को मृत्युदंड की सज़ा सुनाकर जाति पंचायतों के बीच खलबली पैदा कर दी क्योंकि इसने उनको याद कराया कि खाप पंचायतें संविधान से ऊपर नहीं हैं। अदालत ने इस बात को भी गंभीरता से स्वीकारा कि मनोज व बबली की सुरक्षा के लिए तैनात पुलिसवाले ने दरअसल अभियुक्तों का साथ दिया था।

भौगोलिक रूप से छोटा होने के बावजूद हरियाणा समाज सामाजिक-सांस्कृतिक स्तर पर विषमलैंगिक है। उदाहरण के लिए कुछ क्षेत्रों व कुछ जातियों में गांव के भीतर व सगोत्र विवाह आम हैं। पर कुछ अन्य जातियों व इलाकों में ऐसी शादियां व्यभिचार की श्रेणी में गिनी जाती हैं। खाप व जाति पंचायतें भी पूरे राज्य में मौजूद नहीं हैं बल्कि एक विशेष क्षेत्र में ही इनका अस्तित्व है। इस लिहाज़ से किसी एक विशेष जाति के मुट्ठी भर लोग खुद को हरियाणा का सांस्कृतिक प्रतिनिधि घोषित कर देते हैं और अपने ही पड़ोस में रहने वाले दूसरे लोगों के रिवाजों व परम्पराओं को स्वीकारने से इंकार कर देते हैं।

इस समस्या का संदर्भ समझने के लिए हम हरियाणा की जनसांख्यिकी व विकास के आकड़ों पर एक नज़र डाल लेते हैं। भारत की प्रति व्यक्ति आय स्तर के हिसाब से दूसरे नम्बर पर आने वाला हरियाणा राज्य लिंग अनुपात के मामले में काफी निचले स्तर पर है– 0-6 उम्र समूह में 1000 लड़कों पर 821 लड़कियां। कन्या भ्रूण हत्या के कारण हालात इतने खराब हो गये हैं कि दूर राज्यों से विवाह के लिए लड़कियां लाई जा रही हैं। सम्मान के नाम पर हत्या का समर्थन करने वाली इन महापंचायतों ने एक बार भी कन्या भ्रूण हत्या, दहेज या कृषि आपदा जैसी मुंह बाये खड़ी समस्याओं पर कोई विज्ञप्ति जारी नहीं की है।

परन्तु मनोज-बबली मामले में फैसला आने के बाद उत्तर प्रदेश, हरियाणा व राजस्थान के जाटों ने कुरूक्षेत्र में

13 अप्रैल 2002 को एक महाअधिवेशन आयोजित किया। इस गोष्ठी में यह तय किया गया कि 'सामाजिक व्यवस्था' की वैध सुरक्षा के लिए पंचायत अब कानूनी दर्जा हासिल करने के लिए संघर्ष करेंगी। इस महाअधिवेशन का एक मुख्य मुद्दा था 1955 के *हिंदू विवाह कानून* में संशोधन के लिए ज़ोर देकर सगोत्र विवाहों पर पाबंदी लगाना। इस कानून के अंतर्गत माता-पिता वंशावली संबंधी कुछ रिश्तों के बीच विवाह करने पर पाबंदी पहले से ही दर्ज है।

खाप पंचायत द्वारा जारी किए गए अधिकांश आदेश उन दम्पतियों के विरुद्ध हैं जिनका गोत्र अलग-अलग है। केवल एक हत्या के मामले में दम्पति का गोत्र एक था। ये झूठी अफवाहें फैलाकर कि युवाओं द्वारा अपनी पसंद से की गई सभी शादियां 'कौटुम्बिक व्यभिचार' हैं, ये खाप पंचायतें असलियत में युवाओं के खुद अपना साथी चुनने के अधिकार का विरोध कर रही हैं। अभी तक जितने मामलों में खाप ने फतवे जारी किए हैं उनमें कोई भी सगोत्र विवाह नहीं है। फिर भी शादीशुदा दम्पति को भाई-बहन बताकर, उन्हें व उनके परिवारों को सामाजिक बहिष्कार सहने व गांव से निकल जाने पर मजबूर किया गया है।

गोत्र फसादों के मामलों में एक अन्य मामला वेदपाल मोन का है जिसे पीट-पीटकर जान से मार डाला गया जब वो जीन्द ज़िले के सिंगवाल ग्राम में अपनी पत्नी को उसके माता-पिता की कैद से छुड़ाने गया था। वेदपाल के साथ उच्च न्यायालय का वारंट अफ़सर व पुलिस भी थी। वेदपाल का विवाह न तो गोत्र के भीतर था, न ही एक ही गांव का मामला था।

मार्च 2009 की खाप महासभा में वेदपाल को मौत की सज़ा सुनाई गई और जून में फैसले को अंजाम दिया गया। एक दूसरे मामले में खाप ने एक अन्य विचित्र रिवाज का सहारा लिया था- दम्पति की शादी 'भाईचारा' गांव में हुई थी इसलिए उसे खारिज कर दिया गया। जिन दम्पतियों को निशाना बनाया गया है उसे देखते हुए यह स्पष्ट हो गया है कि असली मकसद औरतों की यौनिकता पर नियंत्रण है जिससे सारी सम्पत्ति पितृसत्तात्मक जाति समूह यानी जाट समुदाय के बीच संघटित रहे।

सर्व खाप पंचायत नेताओं ने उन व्यक्तियों के विरुद्ध भी सामाजिक बहिष्कार करने का ऐलान किया है जो जाति पंचायत की मुखालफ़त कर रहे हैं। एक पूर्व पुलिस अध्यक्ष जो हरियाणा की जाति पंचायत का सदस्य भी है ने खुले आम खाप आलोचकों को धमकी दी है। सवाल यह है कि पूर्व पुलिस महानिदेशक कानून का अनुसरण करने वाले नागरिकों को इस तरह खुलेआम धमकी देकर सार्वजनिक राजकोष से पेंशन व अन्य सुविधाओं का हक़दार कैसे हो सकता है?

जाति पंचायतों ने पिछड़े वर्गों से उठने वाले विरोध के स्वरों को कुचलने का इरादा किया है। 21 अप्रैल को मिर्चपुर ग्राम में पुलिस की मौजूदगी में उच्च जाति के गुंडों ने बीस दलितों के घर जला दिए जिसमें 18 वर्ष की एक अपंग लड़की और उसके बीमार पिता की मौत हो गई। घटना के तीन दिन बाद मिर्चपुर की खाप पंचायत ने सभी अभियुक्तों को निर्दोष ठहराते हुए उनकी रिहाई के लिए सरकार को अंतिम चुनौती जारी की। गोहाना (2005) व दुलीना (2002) गांवों की पंचायतों ने भी दलितों पर हमले में यही रुख अपनाया था। सामाजिक व आर्थिक कमज़ोर वर्ग के बुजुर्गों के साथ भी कोई रियायत नहीं बरती गई। दिसम्बर 2009 में खेड़ी मेहम ग्राम के एक नव-दम्पति के पिता को पूरे गांव के सामने मुंह में जूता पकड़ने की सज़ा पंचायत ने दी थी।

आम नागरिक दो नैतिक पक्षों के बीच विरोधाभास में घिरे हैं— नये उदारवादी प्रबंध के अंध-उपभोक्तावाद व खाप प्रतिनिधित्व पुराने सामंतवादी मूल्य। इन दोनों पक्षों के बीच कोई तालमेल नहीं है, न ही एक की जगह दूसरा ले सकता है। सच तो यह है कि झूठी आधुनिकता पुरातन पंथियों को और अधिक सशक्त बनाती है। इन दोनों विकारों का विकल्प है पूरे हिन्दी भाषी क्षेत्र में एक ऐसे आंदोलन

की शुरूआत जो स्वस्थ व प्रगतिशील मूल्यों का संचार करे।

इसके साथ-साथ न्याय प्रणाली को भी एक अहम परन्तु सीमित भूमिका अदा करनी होगी। 23 जून 2008 को पंजाब व हरियाणा उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति के एस अहलूवालिया ने 18 से 21 वर्षीय युवा दम्पतियों के दस मामलों को सुनकर ये टिप्पणी की, "उच्च न्यायालय में उन तमाम याचिकाओं की बाढ़ लगी है जिनमें... इस अदालत के न्यायधीशों को विवाहित दम्पतियों के जीवन व स्वतंत्रता के अधिकारों के लिए जवाब देना पड़ता है। राज्य एक मूक दर्शक है। राज्य अपनी नींद से कब जागेगा तथा कब तक अदालतें इन मामलों का निपटारा करके सान्त्वना व मरहम लगाती रहेंगी?" जन आंदोलन के दबाव के माध्यम से एक कमज़ोर राजनैतिक इच्छा-शक्ति वाले विधान मंडल और घुटनाटेक कार्यपालिका को जवाबदेह बनाना होगा।

विद्रोह के स्वर जनवादी जैसे संगठनों तथा अन्य प्रजातांत्रिक समूहों के साथ संघटित हो रहे हैं। युवा पीढ़ी को ज़िम्मेदार सामाजिक कार्यकर्त्ताओं की हैसियत से आगे आकर एक सामंतवादी समाज, जो 'जिसकी लाठी उसी की भैंस' का अनुसरण करता है, के ख़िलाफ़ बदलाव लाने के लिए संघर्ष चलाना होगा। हरियाणा में हर बीतने वाले दिन की कीमत मासूम औरतें व पुरुष अपने जीवन से चुका रहे हैं।

__जागमती सांगवान__ जनवादी महिला समिति हरियाणा की राज्याध्यक्ष व महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक में महिला अध्ययन केन्द्र की डायरेक्टर हैं।

कानून

धारा 300 संशोधन बिल 2010

केंद्रीय सरकार *भारतीय दण्ड संहिता व अन्य दूसरे कानून (संशोधन) बिल 2010* के माध्यम से खाप पंचायतों पर अंकुश लगाना चाहती है। *भारतीय दंड संहिता* की धारा 300 जिसमें हत्या की चार परिभाषाएं दर्ज है, में पांचवा खण्ड जोड़ा जाने का प्रस्ताव है। इस प्रस्ताव के तहत खाप पंचायतों द्वारा मौत के फतवे जारी करने वाले सभी लोगों को मुख्य अभियुक्त यानी "कत्ल" के जुर्म में दोषी माना जाएगा। इन सभी दोषी व्यक्तियों को मृत्युदंड दिया जा सकेगा। अब तक खाप के दोषियों को "साज़िश" करने के जुर्म में अधिक से अधिक पांच वर्ष की सज़ा का प्रावधान था।

धारा 300 में 'कत्ल' के लिए मजबूर करने वाले कारणों को निम्न चार वर्गों में परिभाषित किया गया है-

1. अगर मौत के लिए ज़िम्मेदार कारण का इस्तेमाल 'मौत' के मकसद से किया गया हो।
2. अगर शारीरिक चोट इस तरह की हो जिससे व्यक्ति की मौत हो सके।
3. अगर शारीरिक हिंसा इस उद्देश्य से की गई हो जिससे व्यक्ति की प्राकृतिक मौत हो जाये।
4. अगर कार्य अंजाम देने वाले व्यक्ति को पता हो कि कार्य इस कदर खतरनाक है कि व्यक्ति की मौत हो सकतीहै या उससे कोई ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने की संभावना है जिससे मृत्यु हो सकती हो और यह कार्य मौत या मौत तक पहुंचाने वाली चोट की ज़िम्मेवारी लिए बगैर अंजाम दिया गया हो।

दिल्ली व हरियाणा में होने वाली 'सम्मान जनित हत्याओं' ने इस तरह के कानून की अविलम्ब ज़रूरत पर ज़ोर दिया है। इसके अलावा मंत्रिमंडल भारतीय प्रमाण कानून, हिन्दू विवाह कानून में संशोधन करके मासूम युवा दम्पतियों की सुरक्षा, खाप पंचायतों पर नियंत्रण तथा प्रतिकारी कार्यवाही भी करने की कोशिश करेगा। इस संशोधन में 'अपमान' तथा 'अपमान का अनुभव' कराने वाले व्यवहारों को भी परिभाषित किया जाएगा।

कानून में बदलाव का उद्देश्य उन लोगों के विरुद्ध सख्त कार्यवाई करना है जो सामाजिक मानकों की अवहेलना करने वाले युवाओं व उनके परिवारों की मुखालफ़त करते हैं। उम्मीद है यह कानून जल्दी ही पारित होगा।

महेन्द्र कुमार सिंह, धनंजय महापात्र
साभारः जुलाई 8, टाइम्स ऑफ़ इण्डिया

आमने-सामने

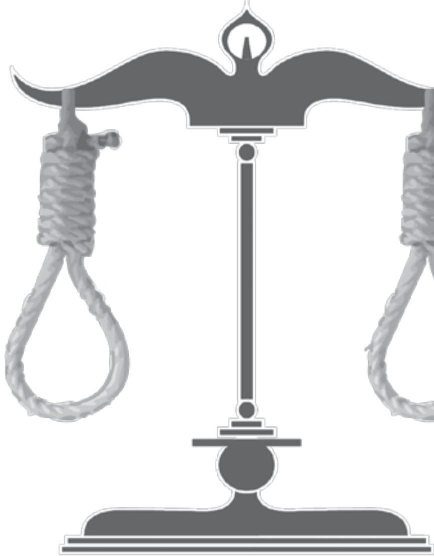

ये कैसा न्याय?

खाप पंचायत व हत्याएंः
इक्कीसवीं सदी का विरोधाभास

पिंकी आनंद

खाप पंचायतों द्वारा न्याय बांटने का ढोंग व समानांतर अदालतें चलाने की प्रक्रिया इक्कीसवीं सदी का हिस्सा नहीं हो सकतीं। हाल ही में हुई 'सम्मान जनित हत्याएं' जो इन अवैध 'कंगारू' अदालतों के हुक्म पर अंजाम दी गई हैं भारत के नागरिक समाज के अग्रणी विरोधाभास को उजागर करती हैं। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि इक्कीसवीं सदी में भी इस प्रकार की निरंकुश अराजकता व हत्याएं निरंतर की जा रही हैं और एक मजबूर नागरिक वर्ग व कमज़ोर राज्य इन पर चुप्पी साधे खड़ा है।

उद्योगपति-विधायक, नवीन जिंदल ने इस चलन को समर्थन देकर अपनी साख बढ़ा ली है। हालांकि शुरूआत में उन्होंने इस मुद्दे पर दिल खोलकर सहयोग दिया था परन्तु अब धीरे-धीरे उन्होंने यह कहना शुरू किया है कि अपने निर्वाचन क्षेत्र के मुद्दों को सरकार के समक्ष रखना उनका कर्तव्य है और अंतिम निर्णय सरकार का ही होगा। यह दूसरी बात है कि उनके वक्तत्व का संशोधन करके उनके मुखर सहयोग को महज मध्यस्थता में तब्दील कर दिया गया है। पर समाज में फैली बुराइयों को सम्बोधित करने के उनके संवैधानिक फ़र्ज़ का क्या हुआ यह कहना मुश्किल है?

हिंदू विवाह कानून, 1956 कई दशक पहले सूत्रबद्ध किया गया था। इसके अंतर्गत निषेध विवाह सिर्फ़ "सपिंड" संबंधों के बीच थे। सपिंड संबंध तब होता है जब सपिंड रिश्तों में वंशानुगत पूर्वज एक हों। अंतर्जातीय विवाहों पर इसमें कोई रोक नहीं है। पर आज जिस बात की मांग की जा रही वह सगोत्र विवाहों पर प्रतिबंध लगाकर उन्हें निषेध घोषित करने की है। *लता सिंह (2006)* मामले में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति मारकंडेय करजू ने अंतर्जातीय विवाह करने वाले दम्पति पर की गई हिंसा की निंदा करते हुए अभियुक्तों को सज़ा सुनाई थी।

क्या हम उस आधुनिक भारत की बात कर रहे हैं जहां सदियों पुराने जाति रिवाजों के उन्मूलन के लिए संघर्ष किए जा रहे हैं? क्या हम उस परिवर्तनात्मक और अखण्ड भारत की बात कर रहे हैं जहां उच्च स्तरीय गतिशीलता, मेल-जोल तथा धर्मों व जातियों के बीच सहिष्णुता मौजूद है?

'खाप' शब्द का उपयोग भौगोलिक रूप से एक सामाजिक-राजनैतिक समूह-गुट के लिए किया जाता है। 'खाप' के सदस्य गांव के बड़े-बुजुर्ग होते हैं जो जाति व समुदाय के आधार पर चुने जाते हैं और जो एक सामंतवादी पितृसत्तात्मक सत्ता को बरकरार रखते हैं। उनके आधिपत्य में चौरासी गांव आते हैं। वे इतने प्रभावशाली होते है कि कानूनी कार्यवाई और अदालती पैरवी के बगैर परिवारों को जाति से बहिष्कृत और विवाहों को अवैध घोषित करने के फतवे जारी कर सकते हैं।

इतिहास हमें बताता है कि 'खाप' का गठन चौदहवीं सदी मे उच्चवर्गीय जाटों द्वारा अपनी सत्ता और आधिपत्य संघटित करने के लिए किया गया था। खाप पंचायतें हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश व राजस्थान के कुछ हिस्सों में प्रचलित हैं। खाप क्षेत्र में रहने वालों के लिए एक ही गोत्र और अपने गांव के दूसरे गोत्रों के बीच विवाह करने पर प्रतिबंध है। दूसरे गांव में रहने वाले परन्तु एक ही उप-जाति के लोगों के बीच भी विवाह निषेध है। इन पंचायतों के पास कोई कानूनी अधिकार नहीं होते परन्तु ये काफी प्रभावशाली होती हैं और सरकार इनके निर्णयों और कार्यवाई को अवैध घोषित करने में असफल रही है। खाप पंचायत की समानान्तर अदालतों में न्याय करने के नाम पर किए अन्यायी फैसलों के कई उदाहरण हमारे सामने मौजूद हैं।

खाप पंचायतों द्वारा प्रतिकारी न्याय एक बर्बर प्रक्रिया का हिस्सा है, इस पर प्रतिबंध लगना ही चाहिए। प्रजातंत्र में हर इंसान को अपनी बात कहने का हक़ है परन्तु न्याय करना हर इंसान का काम नहीं है। यह कानून की प्रक्रिया का विरोध है। मुंबई उच्च न्यायालय के *माधवराव बनाम राघवेंद्र राव (1945)* मामले में सगोत्र विवाहों को वैध माना गया था। इस निर्णय में कहा गया है कि गोत्र की मौजूदा परिभाषा *आठ ऋषियों के वंशज जो अनेक परिवारों में फैले हुए हों,* आज के दौरे में सुसंगत नहीं है। अदालत के अनुसार यह सुझाव मानना बेबुनियाद है कि सभी ब्राह्मण परिवार, उनके गोत्र-प्रवार एक ही वंशावली है जिसका संकेत उनके गोत्र व प्रवारों के नामों से मिलता है।

जब एक समाज का विकास होता है तब नागरिक समाज मानक विरोधी पुराने रिवाज पीछे छूट जाते हैं। सती, बाल विवाह जैसी कुप्रथाओं के साथ कुछ ऐसा ही हुआ है। संघर्ष होना अच्छा है। संघर्ष जब अपनी चरम सीमा पर पहुंचता है तब हलचल होती है, एक नया संतुलन बनाया जाता है और एक नई व बेहतर व्यवस्था का उदय होता है। मौजूदा संघर्ष से भी कोई हल ज़रूर निकलेगा। समाज के सभी वर्ग चाहे वे आम नागरिक हों, नेता, राज्य, केंद्र या कोई और सभी इस मुद्दे को सम्बोधित करने के लिए बाध्य होंगे। हत्या तो आखिर हत्या ही है चाहे उसे किसी भी नाम से पुकारा जाए।

***पिंकी आनंद** सर्वोच्च न्यायालय की वरिष्ठ अधिवक्ता हैं।*

'मान' के रखवाले: हथियारबंद भाई

अर्पिता बासु, नेहा भट्ट, चंदर सुता डोगरा

11 मई	नई नवेली गुरलीन कौर ने अपने परिवार के ख़िलाफ़ जाकर शादी कर ली। भाई, पिता व चाचाओं ने उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर डाले।
12 मई	अंशु-अमित व परिवार वालों ने मिलकर गर्भवती रजनी की हत्या की।
1 जून	खेरवा गांव के प्रवेंद्र ने बहन पुष्पा को, जो एक लड़के से प्यार करती थी, मौत के घाट उतार दिया।
8 जून	चौना गांव के रणबीर व धर्मेंद्र की चचेरी बहन रेखा के दोस्त प्रमोद के खून के लिए गिरफ़्तारी।
20 जून	भिवाड़ी में मॉनिका व उसके प्रेमी पिंकू के कत्ल के लिए उसके भाई व छः अन्य दोषी गिरफ़्तार।
29 जून	मुज़फ्फरपुर के असास मुहम्मद को बहन की हत्या के जुर्म में गिरफ़्तार किया गया।

शायद उस दोपहर को दिल्ली के वज़ीरपुर गांव में काफी 'नये' लोग थे जब हम अंकित गूजर चौधरी व मंदीप नागर का मकान ढूंढ़ रहे थे। संकरी गलियों के किनारे, राशन की दुकानों, गोदाम, छपाई वर्कशॉप के बोर्ड खामोश थे। अगर ये दोनों जेल में नहीं होते तो शायद इन गलियों के नुक्कड़ पर खड़े दिखाई देते। इन गलियों से गुज़रते हुए मोटर साइकिलों पर बैठे, एक दूसरे से गप्पे हांकते, बालकनियों व बिजली-टेलीफ़ोन के तारों के नीचे मोबाइल फ़ोन पर बात करते नौजवानों की तस्वीरें चलचित्र समान सामने से गुज़रती चली गईं। अपनी ही धुन में मग्न इनमें कोई काम निपटाने या कहीं जाने की आतुरता दिखाई नहीं दे रही थी।

मंदीप नागर, अंकित चौधरी व नकुल खारी पर हत्या का आरोप है। लगभग बीस वर्ष की उम्र के इन दो भाइयों, मंदीप और अंकित ने अपने दोस्त नकुल के साथ मिलकर अंकित की बहन शोभा की हत्या की थी। पर उत्तर भारत के "सम्मान हत्या इलाकों में यह कोई अपवाद नहीं है।" ऐसा भी नहीं है कि ये नौजवान कभी स्कूल न गये हों जैसा कि हरियाणा के पुलिस अफसर, सुभाष यादव का कहना है, 'स्कूल छोड़कर बैठे, अंगूठा छाप... जो चाहते हुए भी गांव की सीमा से बाहर नहीं जा सकते।'

वज़ीरपुर एक धनाढ्य गांव है और इन तीनों नौजवानों ने यहां सरकारी स्कूल में दाखिला भी लिया था। पर किसी

के लिए भी कॉलेज की डिग्री की कोई अहमियत नहीं थी। शायद इसलिए कि यहां पर किराए से आमदनी काफी अच्छी होती है। जैसा कि वज़ीरपुर के प्रधान, सुभाष खारी समझाते हैं- 'लगभग पिछले बीस सालों से गूजर और राजपूत खेतिहर परिवार अपनी ज़मीनों के किराए से गुज़ारा कर रहे हैं जो करीब चालीस हज़ार रुपया माहवार है। वज़ीरपुर औद्योगिक क्षेत्र से सटे होने के कारण आमदनी अच्छी है।'

पास ही के सत्यवती कालेज के प्रधानाचार्य, शमसुल इस्लाम खुलासा करते हैं कि पास के गांव के दस छात्र उनके कॉलेज में पढ़ते हैं। इस गूजर क्षेत्र की 1857 गदर में ऐतिहासिक भूमिका को याद करते हुए वे अफ़सोस के साथ कहते हैं, 'किराए पर अपनी जीविका चलाने वाले इन युवाओं को काम करने की ज़रूरत महसूस नहीं होती। लड़कियां इस मामले में कहीं ज़्यादा बेहतर हैं।' 'जब अपनी ज़िंदगी के बारे में सोचने की बात आती हैं तब भी लड़कियां सही दिशा में बढ़ रही हैं', गांव में रहने वाले एक व्यक्ति जिनकी बेटी दूतावास में नौकरी कर रही है, का विचार है। 'हमारे यहां डाक्टर, इंजीनियर व विमान परिचारिकाएं सभी हैं।' नौजवानों के विषय में बात करने पर जवाब काफी अलग हैं। एक महिला बताती हैं,— *'मोटर साईकिल है, फ़ोन है, पैसा है और क्या चाहिए?'* उत्तर पश्चिमी क्षेत्र के एन. एस. बुंदेला स्थानीय नौजवानों के बारे में स्पष्टता से कहते हैं- *'बदमाश, गैरज़िम्मेदार और अधिकतर हाई स्कूल तक पढ़े।'* हरियाणा की कॉस्टेबल, सीमा बनवाला बताती हैं, 'हमारे गांवों में सारा काम औरतें करती हैं। लड़के पत्ते खेलते, दारू पीते और सोते हैं।'

तो क्या अपने नए आत्मविश्वास और महत्वाकांक्षाओं के चलते पुरुषों में एक हीनता की भावना बढ़ रही है? क्या इसीलिए अपना भविष्य दांव पर लगाकर नौजवान

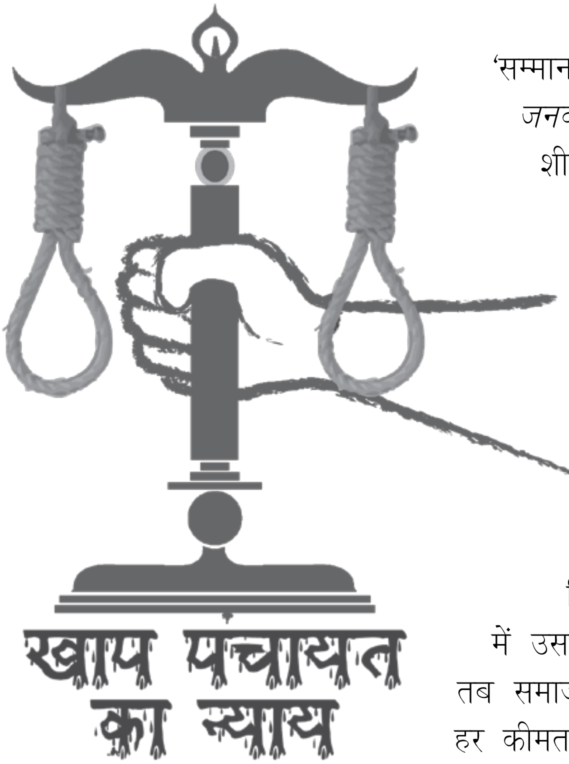

'सम्मान' की रक्षा के लिए आतुर हैं? *जनवादी महिला समिति* की कार्यकर्त्ता शीला हमें सतर्क करती है कि सिर्फ़ जलन, ईर्ष्या जैसे छुटपुट कारण इन हत्याओं के लिए ज़िम्मेदार नहीं हैं। मुद्दा इससे कहीं अधिक गहरा है।

'जब एक लड़की मानकों को न मानते हुए अपने साथी का चुनाव करती है तब वह इशारा कर रही है कि समाज व कानून की नज़र में उसका दर्जा पुरुषों के बराबर है। तब समाज की भावना यही है कि उसे हर कीमत पर रोकना होगा उसका दमन करना होगा। वह अपने सम्पत्ति अधिकार की भी मांग भी कर सकती है इस बात का खतरा इन कम पढ़े-लिखे, ज़मीन पर अधिक आश्रित नौजवानों के जज़बात भड़काने के लिए काफी है।' सर्वोच्च न्यायालय के वकील व *शक्तिवाहिनी* संगठन के अध्यक्ष, रविकांत जिन्होंने सम्मान जनित हत्याओं के विरुद्ध जनहित याचिका दायर की है बताते हैं- 'वे जानते हैं कि विखण्डित होती ज़मीनें हमेशा दुधारू गायों की तरह नहीं होंगी। न ही इनसे उनके शहरी चमक-धमक वाली जीवनशैली के ख्वाब पूरे हो सकेंगे।' एक व्यावसायिक दुनिया के अभाव में अंकित व मंदीप जैसे नौजवान परम्परा के विकृत मानकों, सजातीय विवाह व पितृसत्ता के पुराने मानदण्डों में कैद रहते हैं। रविकांत आगे जोड़ते है 'निराशाजनक लिंग अनुपात के कारण यहां यह भी प्रचलित मत है कि अपने सामाजिक स्तर से बाहर का व्यक्ति अगर उनके समाज की औरत के साथ विवाह करना चाहता है तो उसे उसकी कीमत अदा करनी होगी।'

जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय के समाजशास्त्री, प्रोफेसर सुरिंदर जोधखा कहते हैं, 'यह ज़रूरी है कि अपराध कर्म करने वाले युवा हों और उन्हें जुर्म करने के लिए यह विश्वास दिलाकर तैयार कर लिया जाए

कि उनकी गिनती नैतिकता के हिमायती लोगों में होगी। जैसे ही गोलियां चलती हैं इस बात को बढ़ावा दिया जाने लगता है।' शोभा के चाचा, धर्मवीर नागर ने हत्या के बाद फौरन ऐलान कर दिया था 'समाज के लिए ये मर्डर ज़रूरी था।'

पर इस बात पर सर्वोच्च न्यायालय को भी अपने हिस्से की ज़िम्मेदारी लेनी होगी। मुंबई की सुषमा तिवारी की हत्या का गुनाहगार उसका चौबीस वर्षीय भाई जिसने सुषमा के 'निम्न जाति' के पति, ससुर व दो छोटे बच्चों की हत्या की थी, की सज़ा रद्द करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में कहा, 'यह आम अनुभव है कि जब छोटी बहन कुछ चलन के विरुद्ध करती है जैसे कि इस मामले में किया गया था- अन्तर्जातीय, अन्तर्सामुदायिक विवाह जो एक गुप्त प्रेम संबंध का नतीजा था तो समाज में उसके बड़े भाई को इस संबंध को न रोकने के लिए ज़िम्मेदार ठहराया ही जाता है।' जोधखा इस सामाजिक ताने-बाने की गिरफ़्त में कैद युवाओं की स्थिति की समीक्षा करते हुए कहते हैं, 'वे गांव में रहकर खेती-बाड़ी नहीं करना चाहते पर पारम्परिक समुदाय में उनका स्वार्थ निहित है। चूंकि वे अपने बलबूते पर सफल होने में असमर्थ रहे हैं इसलिए अपने ग्रामीण संस्थानों के पास वापस लौटकर, उसके पितृसत्तात्मक ढांचों से खुद को जोड़ लेने के अलावा उनके पास अन्य कोई विकल्प नहीं होता।'

और इसके बाद एक झूठा विश्वास कि जो समुदाय उन्हें बुलाता है वही उसे मौका पड़ने पर उनको बचाने के लिए आगे आएगा पुख्ता होता जाता है और 'न्याय' के मुजाहिद, 'परम्परा' के समर्थक, 'जाति पवित्रता' के स्तंभ, गोलियां दागते, कुल्हाड़ी उठाते और चाकू घोंपते हुए अपनी बहनों को राह पर लाने निकल पड़ते हैं। तब स्नेह से बंधी राखियां और सांझे बचपन की यादें भाड़ में झोंक दी जाती हैं।

साभारः आउटलुक अंक 12 जुलाई

स्वप्न सुंदरियां: बदलती लड़कियां

उसका नाम माफ़ी है। हां, यही है उसका असली नाम। 'अंग्रेज़ी में जिसे 'सॉरी' कहते हैं', गुलाबी चूड़ीदार और जाली वाली बाहों वाली जामुनी कमीज़ पहने उस लड़की ने मुझे समझाते हुए कहा। हरियाणा के रोहतक ज़िले में सिसना गांव के सोलंकी अनुसूचित जाति परिवार की तीसरी लड़की होने पर उसे यह नाम दिया गया था। पर इस होशियार, ज़िंदादिल और फुरतीली लड़की ने अपने इस क्षमायाचना भाव वाले नाम को त्यागकर खुद को तमन्ना कहना शुरू कर दिया है। एक भूतपूर्व सैनिक की यह बेटी अपने परिवार में बी.ए. करने वाली पहली लड़की है। लड़कर बस से रोहतक के नेकी राम कॉलेज तक अकेले सफ़र करने वाली तमन्ना वकील बनने का सपना देखती है और अपनी बहनों के पतियों से अलग तरह के लड़के के साथ ही शादी करना चाहती है। पूछने पर कि लड़का कैसा हो वह एक साधारण सा जवाब देती है, "जो मेरी फीलिंग को समझे, मेरी भावनाओं की कद्र करे।"

यह साहस का ही तो काम है- देश के उस हिस्से में रहते हुए ख्वाब देखने की हिम्मत करना जहां लड़कियों और उनके दोस्तों को अपनी मर्ज़ी से शादी करने के लिए मौत के घाट उतार दिया जाता है। पर यहां पर ख्वाब देखने वाली सिर्फ़ अकेली तमन्ना ही नहीं है। हरियाणा की नृशंस हत्याओं, पड़ोसी राजस्थान की कतारों, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और पिछले महीने दिल्ली के एक गांव वज़ीरपुर की बाढ़ और 'मान' के पुरातन मानकों की रक्षा के बीच जड़ पकड़ती एक सीधी-साधी आधुनिक सच्चाई है— औरतों की बढ़ती सामाजिक गतिशीलता।

देखने-सुनने में तमन्ना उस खास ग्रामीण लड़की की तरह लगती है जिसकी तादाद इस क्षेत्र में बढ़ती चली जा रही है: अपनी मां-बड़ी बहनों से बेहतर शिक्षित, ढीली कमीज़ की जगह चुस्त कुरती पहने, मोबाइल फ़ोन पकड़े, अपनी कमाने की क्षमता पर अधिक आत्म-विश्वास ओढ़े और अपनी शर्तों पर ज़िंदगी जीने की काबलियत पर फ़क्र करती और जिसको दबाना शायद कुछ मुश्किल है... कभी-कभी अपने ऊपर दुखद परिणाम पैदा करती—खाप पंचायतों, ग्रामीण बुजुर्गों, बंदूक चलाते भाई और गांव के दबंग पुरुषों के लिए- वह एक स्पष्ट चुनौती है।

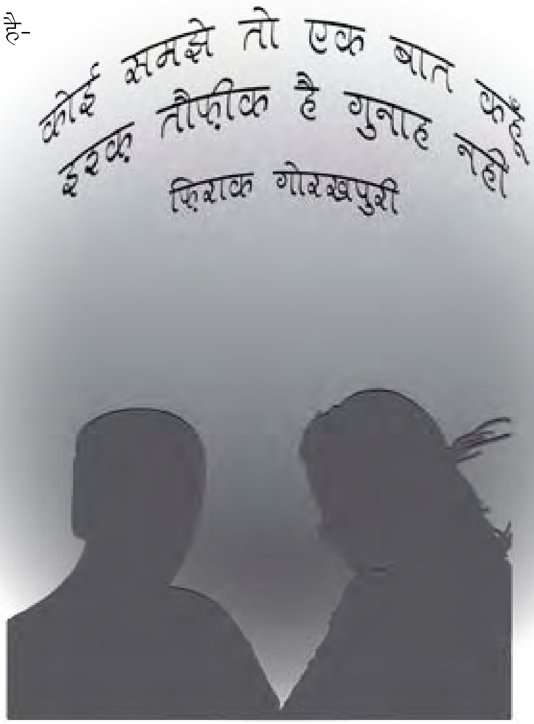

परम्पराओं के तथाकथित रक्षक भी इस बात को स्वीकारते हैं। जाट खाप सम्मेलनों के अथक प्रशासक कर्नल चंदर सिंह दलाल जो सगोत्र विवाहों के विरोध में अभियान चला रहे हैं कहते हैं- "अब केवल लड़कों को दोष देना संभव नहीं है जैसा कि हम पहले करते थे कि वो हमारी बेटी को लेकर भाग गया था। आजकल जो कुछ भी हो रहा है उसके लिए लड़कियां भी ज़िम्मेदार हैं।

वो पढ़ी-लिखी हैं, किसी ने उनको बेवकूफ़ नहीं बनाया है। किसी ने उनको फंसाया नहीं है।"

इसमें अचरज की कोई बात नहीं है कि कर्नल दलाल का इशारा बबली की ओर है। हरियाणा की शिक्षित, खूबसूरत युवा ज़मींदार परिवार की जाट लड़की जिसने अपने ही गोत्र के लड़के मनोज से विवाह करने का साहस दिखाया। स्थानीय अदालत ने इस मामले में एक ऐतिहासिक फैसला सुनाया- मार्च में बबली के परिवार के पांच सदस्यों, जिन्होंने बबली-मनोज दोनों का खून किया था को मृत्युदंड की सज़ा दी। इस फैसले ने न सिर्फ़ रूढ़िवादी मंडलियों के बीच विस्मयकारी हलचल पैदा की बल्कि दूसरे जोड़ों को खुलकर बाहर आने की हिम्मत भी प्रदान की है।

पर कर्नल दलाल का संकेत मॉनिका नागर और उसकी चचेरी बहन शोभा जिनके रिश्तेदारों ने उन्हें वज़ीरपुर गांव में गोलियों से भून दिया था कि ओर भी हो सकता है। कॉलेज में पढ़ी, खुले विचारों वाली गूजर लड़की मॉनिका ने अपनी सगाई तोड़कर, "गांव बहिर्विवाह" नियम का उल्लंघन करते हुए अपने ही गांव के एक विजातीय राजपूत लड़के कुलदीप के साथ शादी कर ली। उसकी बहन शोभा ने इससे भी अधिक "बुरी" बात की- एक मुसलमान लड़के के साथ घर से भागकर, मॉडलिंग के ज़रिये कमाई करने की कोशिश। यह उस गांव में मान्य व्यवसाय नहीं हो सकता था जहां लोगों ने लड़कियों को स्कूल-कॉलेज जाने, या नौकरी करने की छूट तो दे दी है पर शर्त यह है कि नौकरी 'इज़्ज़तदार' हो, रात से पहले घर लौटने का इंतज़ाम हो और पहनावा सीधा-साधारण हो- फैशन परस्त नहीं और घर से भागना तो तौबा-तौबा।

एक ओर औरतों को अपनी बेहतरी के बारे में सोचने की 'इजाज़त' देना और दूसरी ओर "गलत" आदमी से शादी करने पर उन्हें मार डालना— हरियाणा में यह विरोधाभास बहुत तीव्र है जहां औरतों की शिक्षा का स्तर इतना ऊपर उठ गया है कि अपनी अनपढ़ या कम पढ़ी-लिखी मांओं की झलक तक उनमें दिखाई नहीं देती।

चूंकि ज़्यादा लड़कियां कॉलेज जाने लगी हैं इसलिए स्कूल खत्म करके बस से कॉलेज आने-जाने वाली लड़कियों का दिखना आम बात है। कुछ लड़कियां पढ़ाई पूरी करने के बाद नौकरी भी करने लगती हैं जो इस बात पर निर्भर करता है कि उसका परिवार कितने खुले विचारों का है। कम व मध्यम आमदनी वाले परिवार लड़कियों की शिक्षा में उनका साथ देते हैं। आसानी से मिलने वाले शराबी, कम शिक्षित, ज़मीन के भरोसे जीवन चलाने वाले लड़कों की जगह मांएं इनके लिए पढ़े-लिखे वर चाहती हैं। एक गृहिणी शर्मिला ओहलन बताती है- व्यावसायिक लड़कों को शिक्षित लड़की चाहिए चाहे वह विवाह के बाद नौकरी करे या न करे। अपनी भतीजी के लिए लड़का ढूंढने का थका देने वाला काम करने वाली एक महिला कहती हैं- "अगर लड़की मेरी भतीजी की तरह अधिक शिक्षित भी हो तो भी वे सभी सर्टिफिकेट, मेडल, जूडो व खेलकूद के तमगे देखना चाहते हैं।"

जैसे-जैसे लड़कियों की गतिशीलता बढ़ती है वे ज़्यादा नौजवानों से मिलने लगती हैं। मनोज की बहन सीमा बनवाला जो खुद एक नई हरियाणवी महिला की छवि है, तेईस वर्ष की एमए पास पुलिस कॉस्टेबल सीमा वकालत करना चाहती है। वह बताती है, "लड़कियां बस से कॉलेज जाती हैं, रास्ते में दूसरे गांव के लड़कों से उनकी दोस्ती हो जाती है जिनके साथ उन्हें शादी करने की इजाज़त नहीं होती। अधिकांश अपने

- पिछले 25 वर्षों में हरियाणा में कॉलेज जाने वाली लड़कियों की संख्या चार गुना बढ़ी है।
- बारहवीं पास लड़कियों की संख्या पांच गुना बढ़ी है जबकि लड़कों की संख्या दोगुनी भी नहीं हुई।
- कुछ ज़िलों में लड़कों से ज़्यादा लड़कियां कॉलेज जाती हैं।
- परिवार चाहते है कि लड़कियां पढ़-लिख कर अच्छे पति हासिल करें, पर प्रेम विवाहों पर लगाम कसी जा रही है।

माता-पिता को बताने की हिम्मत नहीं जुटा पातीं। बबली व मनोज की शादी हमारे गांव का प्रथम प्रेम विवाह था।"

पर पिछले तीन वर्षों में हालात काफी बदल गए हैं। अब ग्रामीण प्रेम संबंध जोड़ने वाले जोड़ों की संख्या काफी बढ़ गई है- पंजाब-हरियाणा उच्च न्यायालय में सुरक्षा की मांग को लेकर आने वाले इन युवाओं के कारण अदालत का नाम 'मैरिज ब्यूरो' पड़ गया है। वरिष्ठ वकील अनुपम गुप्ता जो अदालत द्वारा नियुक्त कमेटी के सदस्य हैं के विचार में "लाल चूड़ा पहने और मेंहदी रचे हाथों वाली लड़कियां लड़कों से ज़्यादा दृढ़ निश्चय वाली हैं। अगर लड़की के माता-पिता भी अदालत में हों और उन्होंने लड़के के ख़िलाफ़ अपहरण का अभियोग लगाया हो तो भी लड़की उनका साथ नहीं देती। वे अपने चुनाव के अधिकार को लेकर स्पष्ट रूप से तैयार हैं और उसके लिए किसी भी हद तक जा सकती हैं।"

"शिक्षा व तकनीक की मदद से युवा खाप पहचानों और गांव के पारम्परिक कोयों के बाहर नए सामाजिक गठबंधन स्थापित कर रहे हैं। वे इन पहचानों पर अब आश्रित नहीं हैं", चंडीगढ़ विकास व सम्प्रेषण संस्थान की जेंडर स्टडीज़ रिसर्च विभाग की अफ़सर रेणुका डागर कहती हैं। वकील राजीव गोदरा सिरसा के दातेर गांव के एक सत्रह वर्षीय लड़के से हुई बातचीत याद करते हुए बताते हैं- "जब उससे उस लड़की के बारे में पूछा गया जिसे मोबाइल फ़ोन पर एक पुरुष दोस्त से बात करते हुए पकड़ा गया था तो फैसले की तरफदारी करते हुए लड़के ने बताया, "बाहर जाकर इन लड़कियों को न जाने क्या हो जाता है। गांव के स्कूल में अगर हम इनसे कॉपी भी मांगते हैं तो ये टीचर से शिकायत कर देती हैं।"

पितृसत्तात्मक समाज के लिए ये सब बदलाव हलचल पैदा करने वाले हैं। पर कार्यकर्त्ता जागमती सांगवान के अनुसार वर्जित संबंधों व विवाहों को रेखांकित करने वाली उत्तेजना महिलाओं की यौनिकता पर नियंत्रण करने का स्पष्ट प्रयास है। "यहां पर जटिल सामाजिक-आर्थिक कारणों का जाल है। प्रमुख डर है कि विश्वासघाती औरतें अपने पतियों की मदद से *हिन्दू व्यक्तिगत कानून* के तहत अपने सम्पत्ति अधिकार हासिल करने की हिम्मत करेंगी- वो अधिकार जो अब तक एक अंतरंग दायरे में विवाह करने पर अक्सर त्याग दिए जाते रहे हैं।"

इसलिए अच्छा है कि उन्हें वर्जित विवाह के चक्रव्यूह में जकड़कर रखा जाए। साथ ही विजातीय और धर्म के बाहर के प्रतिबंध भी हों। इसके अलावा सगोत्र, अपने गांव के भीतर, दूसरे गोत्र, या फिर दूसरे गांव में विवाह करने पर रोक जहां वंशावली संबंध मौजूद हों आदि-आदि मनाहियां भी। व्यवहार में ये कानून उतने अपरिवर्तनीय नहीं हैं जितने दिखाई पड़ते हैं। समय-समय पर सामाजिक ज़रूरतों, स्त्री भ्रूण हत्या व गिरते लिंग अनुपात के कारण वधुओं की कमी के जवाब स्वरूप इनमें बदलाव किये जाते हैं। उदाहरण के तौर पर इन मामलों का दस्तावेज़ीकरण करने वाले कर्नल दलाल स्वीकारते हैं कि जोड़ों की दादी व माता-पिता के गोत्र मिलाने का पारम्परिक रिवाज अब धीरे-धीरे दरकिनार होता जा रहा है।

पचास सालों में और फीकापन आयेगा। आखिरकार चोटी और घाघरी लुप्त हो रही है। पर यह धीरे-धीरे ही होगा- विकास की एक प्रक्रिया से गुज़रकर। पर रफ़्तार कौन तय करेगाः क्या सिर्फ़-पदवी संभाले पुरुष या अन्य लोग भी- जैसे ये युवा औरतें? यही चुनौतीपूर्ण सवाल सम्मान के नाम पर होने वाली हत्याओं की खून छितरी पगडंडी पर मुंह बाए खड़ा है।

साभारः आउटलुक अंक 12 जुलाई

लेख

सम्मान जनित हत्याओं की रिपोर्टिंग

राजश्री दासगुप्ता

अगर आकांक्षाएं पूरी हो सकतीं तो भारत एक जाति विहीन समाज होता और राज्य की ओर से धन की वर्षा होती! भारत को 'अवरोध-मुक्त देश' बनाने के लिए केंद्रीय सरकार ने राज्यों को हिदायत दी है कि जाति से बाहर विवाह करने वाले युगलों को आर्थिक सहायता दी जाये। पर यह निर्देश अंतर्धार्मिक विवाहों पर लागू नहीं होता। मीडिया के अनुसार यह सरकार की प्राथमिकताओं में शामिल नहीं है। सरकार धार्मिक कानूनों को लेकर किसी विवाद में पड़ने की इच्छुक नहीं है। फिलहाल राज्य की तवज्जो अंतर्जातीय विवाहों तक सीमित है।

देश के विभिन्न हिस्सों में दम्पतियों को जातीय मानकों का उल्लंघन व स्व-चयनित विवाह करने पर बहिष्कृत, अपमानित व कत्ल किया जा रहा है। उत्तर प्रदेश (2009) में *आली संस्था* के अनुसार सम्मान जनित हत्याओं के 70 मामले व सम्मान जनित अपराधों के 74 मामले सामने आये हैं। हरियाणा में हर माह 8-10 सम्मान जनित अपराध व हत्याओं की खबरें छपती हैं। नारीवादी इन हत्याओं के लिए 'सम्मान' शब्द के उपयोग की निंदा करती हैं क्योंकि इन संगीन अपराधों में सम्मान का कोई पक्ष मौजूद नहीं होता तथा इसका उपयोग इनके पीछे छिपे अपराधी मकसद को भी उजागर नहीं करता।

कार्यकर्त्ताओं का आरोप है कि पुलिस व निचली अदालतें जो राज्य का प्रतिनिधित्व करती हैं किसी भी मामले के निपटारे या संतोषजनक निदान में सहायक नहीं रही हैं। अक्सर पुलिस की प्रतिक्रिया सुरक्षा चाहने वाले युगलों के प्रति बेरुखी की होती है या फिर वे खुद ही अंतर्जातीय-अंतर्धार्मिक शादियां करने वालों को गिरफ़्तार कर लेते हैं और उन्हें प्रताड़ित करके मानव अधिकारों का उल्लंघन करते हैं।

निचली अदालतें भी इन्हीं पूर्वाग्रहों से ग्रस्त हैं और इनके फैसलों में कानूनी हस्तक्षेप व संवैधानिक कानूनों के बीच का अंतर साफ़तौर पर दिखाई पड़ता है। ऐसे कई मौके हैं जहां न्यायपालिका ने एक पितृसुलभ रवैया अपनाते हुए औरतों के संरक्षकों का पक्ष सुरक्षित रखा है, हालांकि लड़की ने अपनी उम्र और विवाह के लिए रज़ामंदी दोनों का हवाला कानून के समक्ष प्रस्तुत किया है।

इन मामलों में मिडिया की रिपोर्टिंग को लेकर *आली, लखनऊ* ने अखबार के पत्रकारों के साथ एक चर्चा आयोजित की थी जिसमें जमकर बहस हुई। 2007 में कोलकाता के रिज़वान-उर-रहमान मामले में एक चौकस मीडिया ने ही अहम भूमिका अदा की जिसके चलते मौत की सच्चाई सामने आई थी। रहमान की मौत समाज के संरक्षकों द्वारा सत्ता के दुरुपयोग का एक अपमानजनक पहलू है। तीन वरिष्ठ पुलिस अफ़सरों ने मशहूर तोड़ी व्यवसायिक परिवार की लड़की प्रियंका व उसके शिक्षक रहमान के विवाह करने पर उसे धमकाया व प्रताड़ित किया। 21 सितम्बर को शादी के तीन हफ़्ते बाद रहमान की लाश रेल की पटरी के पास पाई गई। शहर में इस मामले को लेकर काफी बवाल मचा और साम्प्रदायिक दंगे भड़कने के डर और सार्वजनिक दबाव के कारण राज्य सरकार ने दो पुलिस अफ़सरों को निलंबित कर दिया गया। इस मामले को जायज़ ठहराने वाले पुलिस कमिश्नर के ख़िलाफ़ भी कड़ी कार्यवाई की गई।

ये मामला दिलचस्प इसलिए बना क्योंकि रहमान की कहानी मीडिया में केवल रेल की पटरी पर पाई एक अनजान व्यक्ति के शव की खबर बनकर रह गई थी। परन्तु एक जागरूक मानव अधिकार कार्यकर्त्ता और बंगला टीवी चैनल के समाचार सम्पादक ने इस 'छोटी

खबर' के पीछे की 'बड़ी कहानी' और इसमें 'सत्ताधारियों का हाथ' होने की सच्चाई भांप ली। उसके प्रयासों से एक जांच-पड़ताल टीम का गठन हुआ जिसने इस मामले में पुलिस व व्यवसायिक तोड़ी परिवार तथा रहमान की संदिग्ध मृत्यु की छान-बीन शुरू की।

पर हर बार प्रेस इस तरह के मामलों को रिपोर्टिंग को लेकर चौकन्नी व संवेदनशील नहीं रहती है। लखनऊ गोष्ठी के सदस्यों के विचार में मीडिया के गिने-चुन पत्रकारों को छोड़कर इन युगलों के हालातों पर संवेदनशीलता से रिपोर्टिंग करने वालों या मौत के संदर्भ व जोड़ों पर होने वाली हिंसा के सांस्कृतिक-सामाजिक पहलू को समझने वालों की कमी दिखाई देती है। अक्सर अखबार की सुर्खियों में *भाई ने प्रेम दीवानी बहन का सर कलम कर दिया* या फिर *लड़की के भाइयों ने उतारा इश्क का भूत* जैसे भ्रमित व सनसनीखे़ज शीर्षक पढ़ने को मिलते हैं। खबरों की भाषा भी मुद्दे की अहमियत, सच्चाई व मानवाधिकार उल्लंघन को नज़रअंदाज़ करती है। युगलों के साथ होने वाली हिंसा या परिवार-समुदाय द्वारा की गई नृशंस हत्याओं को भी चोरी जैसी छुटपुट खबर की तरह रिपोर्ट किया जाता है।

एक पत्रकार के अनुसार 'क्राइम बीट' पत्रकारों को मामले की पूरी जानकारी पुलिस सूत्रों से ही मिलती है। जगह और आर्थिक साधनों की कमी के चलते इन पत्रकारों को मामले की तह तक जाने या घटना स्थल पर तहकीकात करने के लिए प्रोत्साहित नहीं किया जाता। मीडिया में छपी खबरों पर एक नज़र डालने पर यह ज़ाहिर होता है कि पत्रकार शायद ही कभी यह जानने की कोशिश करते हैं कि अभियुक्त 'बलात्कारी', 'अपहरणकर्त्ता' (अक्सर लड़की के माता-पिता लड़के को फंसाने के लिए यही आरोप लगाते हैं) है या फिर जोड़े के बीच रिश्ते में आपसी सहमति है। मीडिया पुलिस द्वारा दिए गये विवरण को बिना किसी छानबीन शब्द दर शब्द निगल जाता है।

बंगला व हिंदी प्रेस द्वारा छापी गई खबरों का लहजा अधिकतर सनसनीखेज़ व गपियाने वाला होता है। रिपोर्ट का रुख "नैतिकवादी" होता है कि किस प्रकार एक लड़की (न चाहते हुए भी) यौन आकर्षण (प्रेम नहीं) के जाल में गिरफ़्तार हो जाती है। खबर में परिवार के कठोर नियंत्रण और दो बालिग व्यक्तियों की चाहत पर सामुदायिक दखलअंदाज़ी पर कोई गौर नहीं किया जाता। दम्पति या तंग आकर आत्महत्या करने वाले साथी को मीडिया काव्यमयी 'भाषा' में 'विफल प्रेमी' जो गौरव के साथ मृत्यु का चुनाव करते हैं, के रूप में पेश करता है। इस सच को सामने लाने की कोई कोशिश नहीं की जाती कि सामाजिक अस्वीकृति व हतोत्साहित होने पर यह दुर्भाग्यपूर्ण कदम उठाया गया था।

युगलों के प्रति इस हिंसा की कड़ी निंदा करते हुए प्रेस विशेषतः अंग्रेज़ी मीडिया 'सम्मान जनित हत्या' को एक असहनशील व सांस्कृतिक रूप से पिछड़े ग्रामीण भारतीय व्यवहार तक सीमित कर देता है। यह मानसिकता ग्रामीण समुदायों को रूढ़िवादी, अविवेकी और पिछड़ा करार देती है और शहरी भारत की प्रगति और विकास की बढ़ती पहुंच को वापस नीचे धकेल देती है।

पर जहां अंग्रेज़ी प्रेस 'सम्मान हत्या' शब्द का उपयोग ग्रामीण समुदाय में युगलों के ख़िलाफ़ होने वाले अपराधों के लिए उदारता से करती है वही शहरी माहौल में होने वाले ऐसे ही कत्लों में इसका इस्तेमाल बिल्कुल नहीं होता— प्रेस ने रिज़वान-उर-रहमान व नितीश कटारा हत्याओं को बतौर 'सम्मान' जनित अपराध हत्या प्रस्तुत नहीं किया है।

नारीवादी इतिहासकार उमा चक्रवर्ती ने इस विषय पर एक साक्षात्कार के दौरान कहा था- "मीडिया इस तरह की हिंसा को ग्रामीण क्षेत्र के आधुनिकता विरोधी पिछड़ेपन के रूप में प्रस्तुत करता है। मीडिया में शायद ही कभी उन पितृसत्तात्मक अवरोधों व रिवाजों पर जानकारीयुक्त चर्चा या विश्लेषण किया जाता हो जो जोड़ों को हर कदम पर, आये दिन सहने पड़ते हैं और जो इन हिंसाओं को कायम रखते हैं।"

यह विडम्बना ही होगी अगर खुद मीडिया ही वास्तविक और संवेदनशील रिपोर्टिंग की जगह सनसनीखेज़ भाषा और खबरों पर केंद्रित बना रहेगा। और ऐसा करने पर मीडिया भी उन जोड़ों की राह में एक अवरोध बन जायेगा जो पुराने दकियानूसी रिवाजों व मानकों को अपने जीवनसाथी चुनने के संघर्ष के दौरान बाहर निकालकर एक 'अवरोध मुक्त देश' बनाने की राह संवार रहे हैं।

साभार *<thehoot.org>*

राजश्री दासगुप्ता *पत्रकार, विकास कार्यकर्त्ता व शोधकर्त्ता हैं।*

ये कैसा न्याय?

पुस्तक समीक्षा

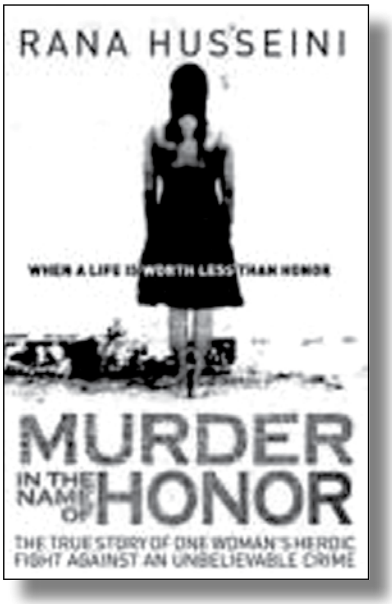

मर्डर इन द नेम ऑफ़ ऑनर

लेखक **राना हुसैनी**
भाषा **अंग्रेज़ी**
प्रकाशक **वन वर्ल्ड पब्लिकेशन्स**
वर्ष **2009**

अम्मान का कत्ल

"गर्मियों में जॉर्डन का तापमान तीस डिग्री के ऊपर चला जाता है। राजधानी की उमस से तंग आकर अम्मान के वे नागरिक जो सड़कों पर रोजी की तलाश में भटकने को मजबूर नहीं थे कॉफ़ी की दुकानें में छिपे बैठे थे।

यह 31 मई 1994 का दिन था, वो दिन जब किफ़ाया की अम्मी, चाचाओं व भाइयों ने तय किया था कि उसे मरना ही होगा।

पुराने शहर के एक हिस्से में था उसका पुश्तैनी मकान। किफ़ाया कुर्सी से बंधी बैठी थी- रसोई के कोने में मिठाई का डिब्बा अनछुआ पड़ा था। थोड़ी देर पहले उसका बड़ा भाई खालिद उसे समझाने आया था कि सब कुछ ठीक-ठाक था।

क़िफाया का गुनाह था कि उसने अपने बड़े भाई मुहम्मद को खुद के साथ बलात्कार करने दिया था। परिवार ने जबरन उसका निकाह चौंतीस साल के आदमी से करवाने से पहले उसका गर्भपात करा दिया था। छः महीने बाद क़िफाया ने तंग आकर तलाक़ ले लिया था।

उसने अपने परिवार को बेइज़्ज़त किया था। अब एक ही रास्ता था।

खालिद ने क़िफाया के होठों के पास एक गिलास बढ़ाया और उसे पानी पीने को कहा। फिर कुरान की आयतें पढ़ने की हिदायत देकर चाकू उठाया। क़िफाया ने रहम की भीख मांगी। बाहर पड़ोसी सुनते रहे पर किसी ने कुछ नहीं किया- वह चीखती रही।

उन्होंने किफ़ाया की चीखें सुनी थीं और रहम की भीख भी। उन्होंने उसके भाई खालिद को घर के बाहर हाथ में खून से लथपथ चाकू लिए चिल्लाते सुना था, "मैंने अपने परिवार का कलंक मिटा दिया।" उसके परिवारवाले उसे बधाई देने का इंतज़ार कर रहे थे।

इसके बाद खालिद ने पास के पुलिस थाने में जाकर आत्म-समर्पण कर दिया। उसने बयान दिया कि परिवार के सम्मान की रक्षा के लिए उसने किफ़ाया का कत्ल किया है।"

पुस्तक के कुछ अंश

अपनी इस पुस्तक में राना हुसैनी के संस्मरण दर्ज हैं, कैसे उन्होंने 1990 के शुरूआती दशक में जॉर्डन में होने वाली 'सम्मान जनित हत्याओं' के चारों ओर बिखरी ख़ामोशी के लिए सतत प्रयास किए।

राना हुसैनी 'जॉर्डन टाइम्स' अखबार में जांच-पड़ताल रिपोर्टर हैं। उन्हें कई सम्मानों से नवाज़ा जा चुका है जिसमें 2000 का *मानव अधिकार निगरानी सम्मान* भी शामिल है।

यह पुस्तक राना हुसैनी की सम्मान के नाम पर की जाने वाली हत्याओं पर गहरी समझ, हत्याओं की सच्चाई तथा कानूनी ढांचे की खामियां जो इन अपराधों को न सिर्फ़ होने देती हैं बल्कि इन्हें वैधता भी प्रदान करती हैं का बेबाक चित्रण पेश करती है। पुस्तक का केंद्र जॉर्डन है परन्तु इसे दूसरे देशों व यूरोप, उत्तरी अमेरीका तथा इटली के समुदायों तक विस्तारित किया गया है। यह विस्तृत परिवेश पाठकों को यह समझने में मदद करता है कि सम्मान जनित हत्याओं को धार्मिक वैधता नहीं मिलती। इसके अलावा पाठक यह भी अनुमान लगा पाते हैं कि 'सांस्कृतिक सापेक्षवाद' के मानक जिनकी आड़ लेकर पश्चिमी समाज सम्मान जनित हत्याओं को जायज़ ठहराने का प्रयास करता है की कोई खास अहमियत नहीं है।

सच्चाई तो यह है कि किफ़ाया, दुआ, अलाक, फादिमे, ब्रूना और टीना की आत्म-कथाओं के ज़रिए लेखिका ने यह समझाने का प्रयास किया है कि इन सभी मामलों में एक साझी कड़ी है। यह साझापन जॉर्डन, ईराक, टर्की, स्वीडिन, इटली, संयुक्त राष्ट्र तथा अन्य सभी देशों में मौजूद समाज की आक्रामकता दर्शाता है जिसके चलते समाज यह तय करता है कि कब-किस व्यक्ति को मौत के घटा उतारा जाना महत्वपूर्ण बन जाता है। परिवार की इज़्ज़त पूरे समुदाय का मान होती है और जब यह खौफ़नाक आदर्श लोगों के दिलो-दिमाग पर हावी हो जाता है तब उन्हें अपने-पराये में फ़र्क़ नहीं दिखता।

अलग-अलग जीवनियों के माध्यम से राना हुसैनी ने इस विषय से अपने जुड़ाव को भी पाठक के साथ बांटा है। भारतीय अखबारों में रोज़ छपने वाली 'रसोई की दुर्घटनाओं' की तरह सम्मान जनित हत्याएं अरबी अखबारों का एक साधारण विषय हैं जिसकी जड़ों तक पहुंचने के लिए उसे लम्बा सफ़र तय करना पड़ा।

जैसे-जैसे वह हर कत्ल की तह तक पहुंचती गई वैसे-वैसे इन औरतों की आवाज़ बनने और सम्मान से जुड़ी हत्याओं के मुद्दे को राष्ट्रीय स्तर पर उठाने की राना हुसैनी की दृढ़ता मज़बूत होती गई। उनकी रिपोर्टिंग को जनता का सहयोग मिला और साथ ही विरोधियों की धमकियां भी।

इस विषय पर अंतर्राष्ट्रीय तवज्जो होने के कारण इस पर एक राष्ट्रीय बहस शुरू हुई जिसने धीरे-धीरे एक नागरिक आंदोलन का रूप ले लिया। इस संघर्ष का एक महत्वपूर्ण पहलू था इसमें आर्थिक व शैक्षिक हाशिएदार वर्ग की सहभागिता जिसने इसे एक ज़मीनी जुड़ाव प्रदान करने में मदद की।

हुसैनी के अपने शब्दों में, 'हमने हर संभव तरीके अपनाये और ज़्यादा से ज़्यादा दस्तखत इकट्ठे किए- इंटरनेट, फैक्स, विज्ञापन, टीवी, रेडियो सभी इस्तेमाल किए। प्रक्रिया बड़ी रोचक थी। हम हर जगह अपने साथ विज्ञप्ति ले जाने लगे- होटल में खाना खाते लोग, बैरों, मैनेजरों, खानसामा, कूड़े वाले, सफाई वाले सभी ने खुशी से दस्तखत कर दिए। छः महीने के अंदर अभियानकर्त्ताओं ने 15300 दस्तखत इकट्ठे कर लिए थे।'

हुसैनी की यह किताब सशक्त, भावपूर्ण, उत्तेजक और सकारात्मक है। *मर्डर इन द नेम ऑफ़ ऑनर* एक दिलचस्प पठन सामग्री हैं खासकर उन लोगों के लिए जिनके पास इस मुद्दे की कोई पृष्ठभूमि नहीं है। पुस्तक चुनौतीपूर्ण है क्योंकि ये इन अपराधों के अंधकारमय पहलू को उजागर करती है और कानून के साथ-साथ मानसिकता में बदलाव की भी मांग करती है। पुस्तक का महत्व इस बात में निहित है कि इतने गंभीर और विवादपूर्ण विषय से जूझते हुए भी इसमें नीरसता और निराशा दिखाई नहीं पड़ती बल्कि एक मानवीय समाज की स्थापना के लिए राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय कानूनों में सुधार तथा आम जनता के जागरुक सहयोग की उम्मीद जगमगाती है।

जुही जैन
नारीवादी कार्यकर्त्ता, लेखिका व हम सबला की सम्पादक हैं।

फ़िल्म समीक्षा

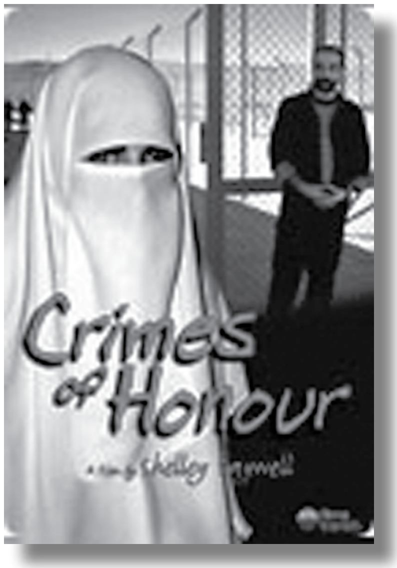

क्राइम्ज़ ऑफ़ ऑनर (जॉर्डन/वेस्ट बैंक)

भाषा **अंग्रेज़ी**
अवधि **मिनट**
निर्देशन **शैली सायल**
वर्ष **1999**

पुरुष रिश्तेदारों द्वारा सम्मान के नाम पर किए जाने वाले औरतों के कत्ल इतने व्यापक हैं कि इस फ़िल्म के अनुसार केवल जॉर्डन में ही हर दो हफ़्तों में एक औरत की हत्या की जाती है। ड्रामा-वृत्तचित्र *क्राइम्ज़ ऑफ ऑनर* इस आपराधिकरण को, जो संस्कृति के नाम पर जायज़ ठहराया जाता है और जिस पर विद्वान व समाजशास्त्री टिप्पणी करने से कतराते हैं, साफ़गोई से प्रस्तुत करती है।

पीड़ितों, उनके पड़ोसियों व हत्यारों के साथ किए साक्षात्कार में यह साफ़ निकलकर आता है कि जब औरत अपने परिवार का विरोध करती है, उनकी इजाज़त के बगैर घर छोड़ती है, अपनी 'इज़्ज़त' गवां देती है या अपना 'बलात्कार' होने देती है तो इस गुनाह की भरपाई मौत की सज़ा से ही की जा सकती है। इस 'मान' के काम को अंजाम देने की ज़िम्मेदारी अधिकतर भाई पर होती है। जले, कटे, गोलियों से छलनी, लहूलुहान, सर कलम किए शरीरों की तस्वीरें हमें यह सोचने को विवश करती हैं कि हिंसा का ये कैसा घिनौना रूप परिवारों की पृष्ठभूमि में पलता है जो अपनों के साथ ऐसा पाशविक सुलूक गवारा कर देता है?

इस प्रश्न का एक उत्तर जो फ़िल्म में दिखाई पड़ता है वह है—बलात्कार व पारिवारिक व्यभिचार। कुछ हत्याएं चारदीवारी के अंदर होने वाले इन अपराधों पर पर्दा डालने के लिए परिवारों द्वारा अपनाये रास्ते हैं। यह साफ़ तौर पर समझाया गया है कि अधिकांश पड़ोसियों व परिवार के सदस्यों का मानना है कि बलात्कार की ज़िम्मेदारी औरत की होती है। एक दृश्य में एक युवा लड़की जो इस बात वाकिफ़ है कि दूसरे कमरे में रखे उसके बहन के सर कटे शरीर पर बलात्कार उसके भाई ने ही किया था, हत्या को सही ठहराते हुए कहती है- "यह अगर वह नहीं चाहती तो ये बलात्कार नहीं हो सकता था।"

यानी इन हत्याओं को बंद करने के रास्ते में सबसे बड़ी रुकावट इस जुर्म को मिलने वाली सामाजिक सहमति और वैधता है। जॉर्डन की न्यायिक प्रणाली में यह रज़ामंदी संस्थागत है और दोषी अभियुक्तों को छः माह या ज़्यादा से ज़्यादा साल भर की कैद की सज़ा दी जाती है। दूसरी ओर ऐसे समाज में औरत की सुरक्षा शायद केवल जेल की सलाखों के पीछे ही हो सकती है।

एक बदसूरत मुद्दे को गहराई और संवेदना के साथ पेश करने के लिए इस फ़िल्म की प्रशंसा की जानी चाहिए। फ़िल्म इस सच को भी स्थापित करने में सफल रही है कि इन अपराधों के पीछे इस्लामी विचारधारा या धार्मिक सहमति की कोई गुंजाइश नहीं है।

जेरुसलम में फ़िल्माया गया फ़िल्म का एक हिस्सा मानव अधिकार कार्यकर्त्ताओं द्वारा ईसाई औरतों को हत्याओं से बचाने पर केंद्रित है। कार्यकर्त्ताओं द्वारा अपने समाज की कमज़ोरियों को उजागर करने की यह कोशिश हांलाकि एक प्रगतिशील सोच का उदाहरण है परन्तु सम्मान के नाम पर की जाने वाली हत्याओं को सिर्फ़ निम्न वर्ग की अज्ञानता और पिछड़े मूल्यों तक सीमित रखना समस्या का आधा-अधूरा पक्ष प्रस्तुत करता है। अमीर, शिक्षित वर्ग में यह समस्या नहीं है ऐसा सोचना व मानना दोनों न्यायसंगत नहीं है। फ़िल्म का यह विरोधाभास वर्जनाओं के सूत्रधारों को एक “दूसरी” श्रेणी में खड़ा कर देता है जो इस आपराधीकरण को पूरी तरह सामने लाने में रुकावट पैदा करता है।

जुही जैन

...अन्त में

सर्वोच्च न्यायालय का आदेश, सार्वजनिक बवाल, महिला आंदोलन व मानव अधिकार कार्यकर्त्ताओं के दबाव व खाप के बढ़ते स्वाग्रह ने सरकार पर जैसा कि अन्य मामलों में होता रहा है- मौजूदा कानून को लागू करने के एवज में एक नया कानून बनाने के लिए दबाव डाला है। गृह मंत्रालय ने एक ऐसे कानून का प्रारूप तैयार किया है जो कत्ल की परिभाषा को व्यापक बनाते हुए खाप-अधिदेश सम्मान जनित हत्याओं को एक विशिष्ठ अपराध मानकर इस निर्णय में शामिल सभी पक्षों को मृत्युदंड की सज़ा का अधिकारी मानता है। अन्य सुझावों में बगावत करके शादी करने वाले जोड़ों के लिए कानूनी विवाह के ज़रूरी नियम-तीस दिन का अग्रिम नोटिस को हटाने का भी प्रस्ताव है।

इस ड्राफ़्ट कानून की संवेदनशीलता तथा सत्तारूढ़ सरकार के बीच आपसी मतभेदों को देखते हुए इस बात की संभावना कम ही लगती है कि सरकार इस कानून को तुरंत ही पारित करने का साहस दिखायेगी। फिलहाल तो इस प्रारूप को मंत्रीमंडल और राज्य सरकारों की प्रतिक्रिया के लिए भेज दिया गया है।

पर इज़्ज़त के नाम पर होने वाली इन हत्याओं से जूझने के लिए कानून के साथ-साथ कुछ अन्य कदम भी उठाने होंगे। यह अपराध समुदाय के सहयोग और कार्यान्वयन से अंजाम दिया जाता है- और इसका खात्मा भी तभी होगा जब समुदाय इसका विरोध करेगा।

हम नारीवादी केवल अदालतों और टीवी स्टूडियो में खाप से विवाद करके संतुष्ट नहीं रह सकतीं। हमें खाप द्वारा अनुमोदित और उनके नियंत्रण को मानने वाले लोगों के विचारों और मान्यताओं को चुनौती देनी होगी। हमें सम्मान के विमर्श से अधिक सशक्त प्रतिकारक-विमर्श तैयार करना होगा।

हमें यह समझने की गलती नहीं करनी चाहिए कि खाप के सहयोगी केवल 'अशिक्षित' व 'देहाती' लोग ही हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनी में कार्यरत एक वरिष्ठ प्रशासक ने खाप का विरोध करने वाली महिला नेताओं की प्रतिक्रिया के जवाब में अपनी वेबसाइट पर लिखा है- *'खाप उत्तर भारत की सबसे पुरानी परम्परा है। सगोत्र विवाहों पर प्रतिबंध विज्ञान द्वारा साबित किया जा चुका है तथा इसी के नतीजतन हम दक्षिण की मिश्रित नस्लों से अलग जाट जैसी 'शुद्ध' नस्ल प्राप्त हुई है।'* इस तरह के विचारों से हमें चाहे जितनी भी विरक्ति या मायूसी हो फिर भी हम

इस विचारधारा वाले लोगों का बहिष्कार नहीं कर सकते- हमें इनके साथ बातचीत करके इन्हें सहमत करना होगा जिससे ये हमारे साथ मिलकर खाप और उनके कठोर साम्राज्य का खात्मा कर सकें।

देश के हर भाग में स्त्री व पुरुष, लड़के व लड़कियां खाप व उनके फतवों को चुनौती देकर, समानता व सम्मान, चयन व मौकों के वैकल्पिक जीवन की तलाश में अपनी जान जोखिम में डाल रहे हैं। उन्हें हमारा सहयोग चाहिए- उन्हें खाप द्वारा उद्धृत झूठे विज्ञान के प्रत्युत्तर में जवाबी विज्ञानी तर्क चाहिए। उन्हें हिंसा के इस विस्फोट के मूल में छिपी सामाजिक व आर्थिक प्रतिक्रियाओं को उजागर करने के लिए सबूत व विश्लेषण चाहिए। वे हिंसा व दमन आधारित पुरुषत्व व मर्दानगी के निर्माण को चुनौती देने के तरीके ढूंढ रहे हैं- जिससे जन्म पूर्व भ्रूण हिंसा से शुरू होकर सम्मान जनित हत्याओं पर जाकर खत्म होने वाले हिंसा के कुचक्र को तोड़ा जा सके।

हमें उम्मीद है कि इस अंक में शामिल किए गये लेख हमारे पाठकों व उनके माध्यम से तमाम अन्य लोगों को कुछ ऐसे विचार प्रदान करेंगे जो उस 'परम्परा' और 'संस्कृति' को सशक्त चुनौती देने में सक्षम होंगे जिसमें सम्मान के नाम पर होने वाली हत्याओं को अनदेखा किया जाता है। साथ ही यह हमें सम्मान जनित हत्याओं के प्रत्युत्तर में समानता, न्याय व अहिंसा पर आधारित एक प्रबल व विश्वसनीय प्रतिकारक-विमर्श तैयार करने में भी सहायक होगा।

कल्याणी मेनन-सेन

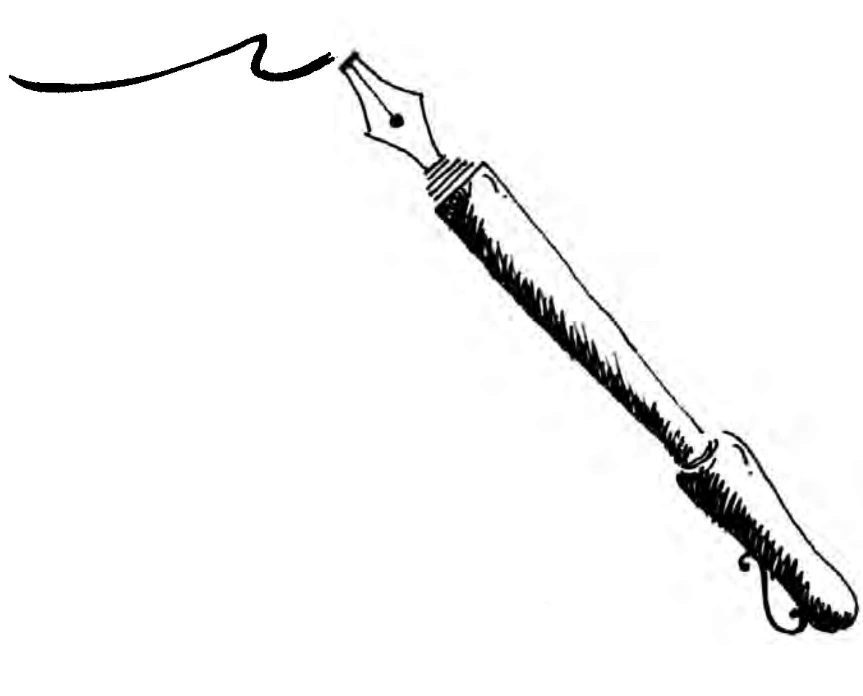

इण्डियन पीपल्स ट्रिब्यूनल ऑन क्राइम्ज़ ऑफ़ ऑनर

4 सितम्बर 2010, नई दिल्ली

यह जनसुनवाई संयुक्त रूप से ह्यूमन राइट्स लॉ नेटवर्क, शक्तिवाहिनी, सुशीला गोपालन मेमोरियल ट्रस्ट, विमेंस लीगल फोरम व वाई.डब्ल्यू.सी.ए. (भारत) द्वारा आयोजित की गई थी।

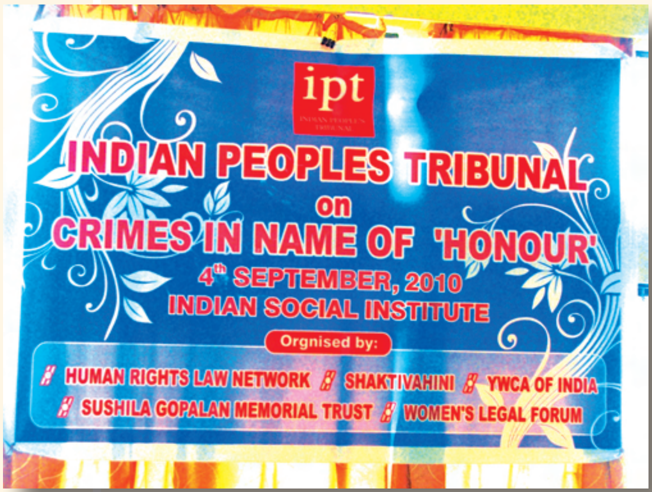

फोटो: सुजाना बारिया

ट्रिब्यूनल की घोषणा करते बैनर्स

मीडिया में सम्मान जनित हत्याओं की रिपोर्ताज की प्रदर्शनी

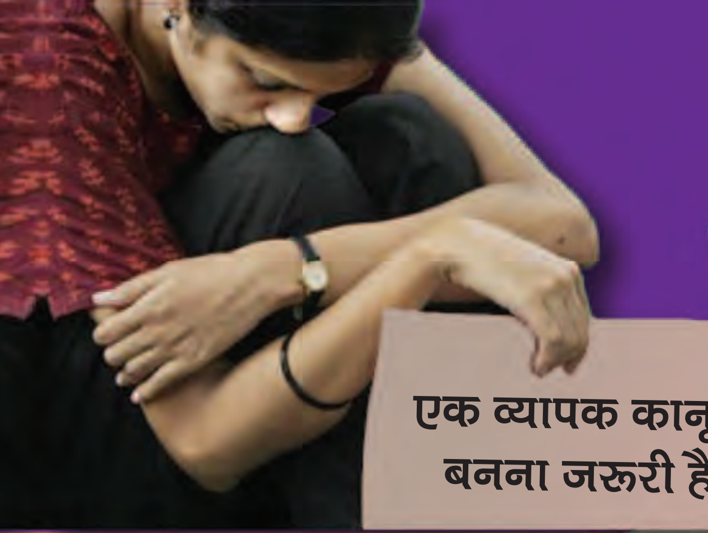

एक व्यापक कानून बनना जरूरी है

ये कैसा न्याय?